जैन भारती

जुलाई, 2007 • वर्ष 55 • अंक 7 • वार्षिक रु. 200.00

SONY BPL SAMSUNG LG IFB Haier Electrolux Kelvinator TCL Whirlpool PHILIPS ONIDA

With best compliments from :

GIRIAS

The Consumer Durable People

The Undisputed No. 1 in Karnataka for Television and Home Appliances

BANGALORE — 6 world class Showrooms

Gandhinagar	Brigade Road	Sadashivnagar	Jayanagar	Domlur Ring Road	Rajajinagar
Ph : 22264551 22204189 Fax : 22353708	Ph : 22228032 22270126 Fax : 22227879	Ph : 23619195 23619196 Fax : 23611448	Ph : 26566140 26566141 Fax : 26566143	Opening By March 2007	Ph : 23119236 23119237 Fax : 23119239

KARNATAKA — World Class Showrooms

Mysore	Hubli	Mangalore
Ph : 2424330 2424331 Fax : 2424332	Ph : 2358601 2358602	Ph : 2445551 2442220

TAMILNADU — World Class Showrooms

Selam	Coimbatore
Ph : 2330735 2330734 Fax : 0427-2330764	Ph : 2231675 Fax : 0422-2233059

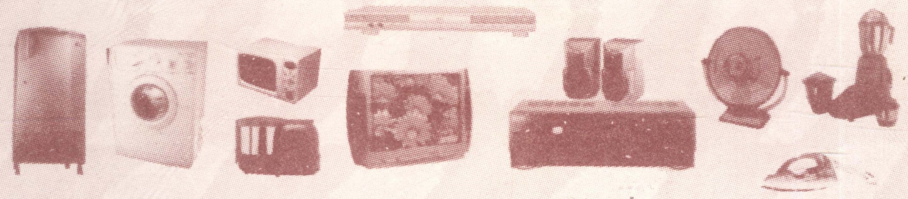

TIGER 388292

KARNATAKA FILATEX

(Mfrs. of H.D.P.E Woven Fabric)
Magadi Chord Road, BANGALORE 560079
Ph. : 23353714, 22384416

UTTARANCHAL TEA CO. PVT. LTD.

Pingalkot, Post. Kausani
Distt. Bagneshwar, Uttaranchal
Ph. : 05962-258330 Fax : 05962-258331

godrej NOKIA Connecting People Sony Ericsson USHA LEXUS FORBES GLEN APPLIANCES BRAUN MAHARAJA kailash ULTRA GRIND MOTOROLA

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 55 • जुलाई, 2007 • अंक 7

विमर्श

11
स्वामी ब्रह्मेशानन्द
जैन धर्म और व्यावहारिक वेदांत : एक दृष्टि

15
डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
व्यक्ति, समाज और नैतिकता

•
आवरण
अडिग

अनुभूति

21
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
तेरापंथ : अनाग्रह है आधार

22
सत्यशोधक : क्रांतदर्शी

27
साध्वी कनकश्री
एक ज्योतिपुरुष; एक शिल्पकार

29
मुनि मदनकुमार
प्रज्ञा जागरण : जीवन का उत्कर्ष

33
साध्वी विश्रुतविभा
बहता निर्झर प्रसन्नता का

37
कहानी
रामनारायण शुक्ल
खिड़कियों से बाहर

42
कविता
जार्ज लुई बोर्हेस की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
अध्यात्म की कसौटी

शीलन

45
मुनि सुखलाल
धर्म और समाज : एक विवेचन

51
साध्वी आरोग्यश्री
स्वास्थ्य चेतना के संवाहक

53
बालकथा
इरा सक्सेना
रोबोट ने की आत्महत्या

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

दोष की स्थापना करने पर साधुपन कैसे रहेगा?

कुछ लोग ऐसा कहते हैं—'अभी पांचवां अर है। इसलिए पूरा साधुपन पाला नहीं जा सकता।' तब उनको स्वामीजी ने कहा—'चौथे अर में 'तेला' (तीन दिनों का उपवास) कितने दिनों का होता है?'

तब उन्होंने कहा—'तीन दिन का होता है।'

स्वामीजी ने कहा—'एक भूंगड़ा (भूना हुआ चना) खा ले, तो तेला रहता है या टूट जाता है?

तब उन्होंने कहा—'टूट जाता है।'

स्वामीजी ने फिर पूछा—'पांचवें अर में 'तेला' कितने दिनों का होता है?'

तब उन्होंने कहा—'तीन दिनों का होता है।'

स्वामीजी ने पूछा—'इस समय एक भूंगड़ा खा लेने पर तेला रहता है या टूट जाता है?'

तब उन्होंने कहा—'टूट जाता है।'

तब स्वामीजी बोले—'तब तुम पंचम-काल के सिर पर क्यों दोष मढ़ते हो? एक भूंगड़ा खा लेने पर तेला टूट जाता है, तो दोष की स्थापना करने पर साधुपन कैसे रहेगा?

फुलझड़ी से क्या होगा?

सामने वालों को समझाने के लिए कड़े दृष्टांत का प्रयोग किया जाता। तब किसी ने स्वामीजी से कहा—'आप कड़े दृष्टांत का प्रयोग करते हो।'

तब स्वामीजी ने कहा—'रोग तो गंभीर बात का हुआ और कहता है, इसे फुलझड़ी से दाग दो।' पर फुलझड़ी से दागने पर वह रोग कैसे मिटेगा? वह मिटेगा आग में तपे हुए लोहे के कुश के दागने से।

ऐसे ही मिथ्यात्व का रोग बड़ा जटिल है, वह कड़े दृष्टांत के बिना कैसे मिट सकता है? •

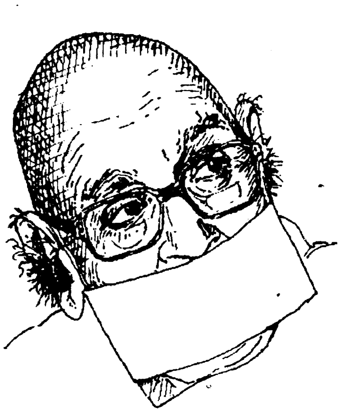

बहुत सारे लोग मुझसे कहते हैं, इस देश में भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध आए। इस युग में महात्मा गांधी का सान्निध्य मिला। और भी अनेक महापुरुषों ने समय-समय पर इस देश में जन्म लिया। वे जब इस देश को बुराइयों से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके, इसे स्वर्ग नहीं बना सके, तब क्या आप ऐसा करने में सफल होंगे? इस संदर्भ में मैं इस भाषा में सोचता हूं कि किसी भी महापुरुष ने पूरे देश को सुधारने अथवा स्वर्ग बना देने का दावा नहीं किया था। दावा तो फिर भी आगे की बात है, ऐसी कल्पना भी शायद नहीं की होगी। तब भला मैं कैसे कर सकता हूं। हां, सबने अपने-अपने समय में अपनी-अपनी शक्ति और पुरुषार्थ का उपयोग देश को सुधारने, उसे बुराइयों से मुक्त करने में किया। मैं भी अपने समय में अपनी शक्ति इस कार्य में लगा रहा हूं। पर, इस प्रयत्न से देश बुराइयों से सर्वथा मुक्त होकर स्वर्ग बन जाएगा, ऐसी घोषणा मैं नहीं करता। फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है। मैं मानता हूं, बुराइयों से संघर्ष करना किसी युग विशेष की अपेक्षा नहीं, अपितु यह एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। मुझे प्रसन्नता है कि मैंने इस कार्य में अपनी शक्ति का सदुपयोग किया है।

—आचार्यश्री तुलसी

प्रत्येक मनुष्य अपने को प्रसन्न रखना चाहता है। वह दुखी बनना नहीं चाहता। प्रसन्नता का एक महत्त्वपूर्ण उपाय आयारों में निर्दिष्ट है—'समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायण'—जो व्यक्ति समता की प्रेक्षा करता है वह अपने-आप को प्रसन्न रख सकता है। समता का अर्थ है—राग-द्वेष मुक्त चेतना की स्थिति। राग-द्वेष मुक्ति की स्थिति की प्राप्ति में निर्विचारता का अभ्यास सहायक बनता है। पातंजल योग दर्शन में कहा गया है—'निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः'—निर्विचारता की स्थिति में आध्यात्मिक प्रसाद उत्पन्न होता है।

जो व्यक्ति अतीत की स्मृति नहीं करता, भविष्य की कल्पनाओं में नहीं उलझता, वर्तमान में जीना जानता है, वह निर्विचारता की साधना में आगे बढ़ सकता है। वर्तमान-जीवी बनना एक साधना है। वे ही व्यक्ति वर्तमान में जी सकते हैं, जिनका चित्त निर्मल हो और जिनकी मानसिक एकाग्रता पुष्ट हो। अधिकांश व्यक्ति वर्तमान में जीना जानते ही नहीं हैं। वे विचारों की उधेड़-बुन में खोए रहते हैं। खाते समय विचार, उठते समय विचार, बैठते समय विचार, चलते समय विचार, यहां तक कि शौच के समय भी व्यक्ति निर्विचार नहीं रह पाता है। नींद में भी विचारों का प्रवाह चालू रहता है। दो क्षण आंख मूंदकर व्यक्ति भीतर झांके तो उसे अपने मन व मस्तिष्क में उठने वाली अनावश्यक विचार तरंगों का अनुभव हो सकता है।

—युवाचार्यश्री महाश्रमण

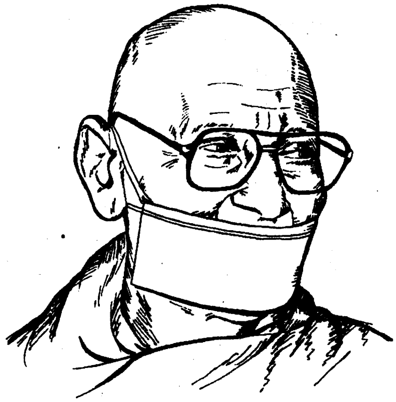

आचार्यश्री तुलसी का स्मरण करें तो एक संकल्प के साथ करें। वह संकल्प यह हो कि मैं अपने जीवन में नैतिकता और प्रामाणिकता को सर्वोच्च स्थान दूंगा। मैं अपने जीवन में अधिकाधिक अनुशासन का विकास करूंगा। आप यह संकल्प आज के दिन लें और देखें कि थोड़े ही दिन में आपमें कितना परिवर्तन आ जाता है। अनुशासन ऊपर से नीचे की ओर उतरने वाली चीज है। यह बड़े लोगों से शुरू हो और छोटे अर्थात् नीचे खड़े लोगों तक पहुंचे—यह अपेक्षा है। आचार्यश्री तुलसी के एक वाक्य को आप अपने जीवन का सूत्र बना लें—**निज पर शासन : फिर अनुशासन।** बड़े लोग स्वयं उच्छृंखल रहकर छोटे लोगों पर शासन करें, यह संभव नहीं हो सकेगा।

आज की समस्याओं के संदर्भ में हम आचार्यश्री तुलसी को पढ़ने और समझने का प्रयत्न करें। उनकी जो अंतर्दृष्टि थी, जो उन्होंने देखा और कहा—उसे समझने और जानने का प्रयत्न किया जाए तो शायद समाज-परिवर्तन की दिशा में बहुत कुछ हो सकता है। उनकी वार्षिकी का यह दिन केवल उनकी स्मृति का दिन न रहे। इस दिन को 'संकल्प दिवस' बनाएं। नैतिकता का प्रशिक्षण, अहिंसा का प्रशिक्षण और रोजगार का प्रशिक्षण—इनका संकल्प लें।

यह त्रिआयामी कार्यक्रम चले तो मैं मानता हूं कि आचार्यश्री तुलसी का स्मरण करना बहुत सार्थक होगा, अन्यथा वही बात होगी कि एक अंधा भिखारी बालक सड़क के किनारे बैठा भीख मांग रहा था। एक पढ़े-लिखे आदमी ने उसे दो रुपए देते हुए कहा—'तुम चार आने, आठ आने की भीख मांगते हो, किसी से आंख क्यों नहीं मांग लेते?' अंधे बालक भिखारी ने कहा—'बाबू! रुपये-पैसे तो सबके पास हैं, आंख किसके पास है—जो मैं मांगू? आज आंख की जरूरत है, चक्षुष्मान बनने की जरूरत है। हमारी अंतर्दृष्टि जागे, हमारा 'इंट्यूशन-पावर' बढ़े—जिससे हम युग की समस्याओं को समझकर समाज को बदलने की दिशा में कुछ कर सकें। आचार्यश्री तुलसी ने जो युग-दर्शन दिया, उसके माध्यम से हम शोषित-पीड़ित जनता तक पहुंच सकें तो बहुत बड़ी बात होगी। अन्यथा आने वाला समय सबसे ज्यादा कठिनाई बड़े लोगों के सामने पैदा करेगा। आप मेरी बात को याद रखें। आने वाले दो दशकों में वह दिन आएगा, जब आप महसूस करेंगे कि पंद्रह-बीस वर्ष पहले जो सुना था, आज वैसा ही घटित हो रहा है। बाढ़ आने से पहले ही पाल बांध ली जाए, इसी में बुद्धिमानी है। आचार्यश्री तुलसी का स्मरण एक पवित्र संकल्प के साथ करें तो मैं मानता हूं कि इनको याद करना हमारे लिए बहुत सार्थक होगा।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी
पुण्य पर्व (आषाढ़ कृष्णा तृतीया : 3 जुलाई) पावन स्मरण

प्रसंग

अध्यात्म की कसौटी

जिस तरह का जीवन और सामाजिक ढांचे का जैसा रूप हमारे सामने आज विद्यमान है, उसमें धर्म और अध्यात्म के ऊपर भी सवाल खड़े होने लगे हैं। आक्रांत करने वाला धर्म का सांप्रदायिक चेहरा और कर्मकांडों के बढ़ते चलन ने विवेक के स्तर पर सोच-विचार करने वाले लोगों के मनों को भी हिला दिया है। ऐसी अदृश्य आशंकाएं सिर उठाए खड़ी हैं कि नीर-क्षीर मत भी साफ-साफ रखने का साहस हर किसी में नहीं होता। सही और सच बात भी अब मुलम्मा लगाकर ही कही जा सकती है। धर्म और अध्यात्म की इस अवस्था से हमारे सामाजिक ढांचे पर सहज रूप से चलता आया अंकुश भी कमजोर हुआ है। इसी के चलते सामाजिक विशृंखलता, आचरणहीनता और आपा-धापी बढ़ी है।

यह अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ रही है, त्यों-त्यों इस पर गंभीर और गहन चर्चा की आवश्यकता भी महसूस होती जा रही है। इसीलिए सब तरह की जोखिमों को समझते हुए कुछ समाज-चेता ऐसे हैं, जो जब-तब इन मुद्दों पर चर्चा करना जरूरी समझते हैं और इन पर बात भी होती है। अणुव्रत आंदोलन एक मिसाल के रूप में हमारे सामने है। यह कहा जा सकता है और सच भी है कि पांच-छः दशकों के बाद भी इस आंदोलन का व्यापकतर असर समाज के ऊपर नजर नहीं आ रहा, पर ऐसा सोचते हुए इस सच को भी मानना ही चाहिए कि आजादी के तुरंत बाद यदि आचार्यश्री तुलसी के इस आंदोलन की शुरुआत नहीं होती तो महात्मा गांधी के अवसान से हुई रिक्तता कहीं अधिक अवसादकारी साबित होती। आज ऐसी बात करने का जो साहस हम कर रहे हैं, अणुव्रत आंदोलन न होता तो शायद नहीं कर पाते। इसी आंदोलन की पृष्ठभूमि में हम आचार्यश्री तुलसी के उत्तराधिकारी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की अहिंसा-यात्रा को देख सकते हैं। बहुत संभव है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के मन में यह मंथन चल रहा हो कि जिस उद्देश्य को लेकर अणुव्रत आंदोलन शुरू हुआ, वर्तमान समय में उसको पहले से कहीं अधिक ईंधन-पानी की आवश्यकता है और इसीलिए उन्होंने अहिंसा-यात्रा की अभिरचना की हो। अहिंसा-यात्रा के आधे दशक से अधिक की अवधि के अनुभव यह बताते हैं कि अणुव्रत आंदोलन के अभिसिंचन में अहिंसा-यात्रा का अभियान समीचीन रहा।

अणुव्रत आंदोलन के अलग-अलग संकुल और उनके छोटे-छोटे नियम हमारे व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक सरोकारों के प्रभावक अंग कैसे बनें—यह मंथन भी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के मन-मस्तिष्क में निरंतर घुमड़ता रहा है। इसका प्रमाण उनके वे प्रयोग हैं जो प्रेक्षा-ध्यान व जीवन-विज्ञान जैसी विधाओं में से निकले हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी और आचार्यश्री तुलसी—युगलद्वय—ने धर्म को संप्रदायातीत कर

उसके आध्यात्मिक रूप को समाजपेक्षी बनाने का युगीन काम किया और उनकी यह प्रक्रिया निरंतर चली, चल रही है। इसी प्रक्रिया को गतिशील बनाने के एक अभिक्रम के रूप में अहिंसा-यात्रा को देखा जा सकता है।

यह कौन नहीं जानता कि परिवर्तन की प्रक्रिया न केवल धीमी होती है, काफी संघर्ष भरी भी होती है। पर, यदि उसकी निरंतरता बनी रहती है तो उसकी जीवंतता भी असंदिग्ध मानी जा सकती है। इस दृष्टि से अणुव्रत आंदोलन की प्रासंगिकता को भी स्वीकार्य माना जा सकता है। इसे महज सुयोग ही कहा जाएगा कि यह सब तेरापंथ की गर्भनाल की उपज है। और तब तेरापंथ और इसके आद्यप्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु के व्यक्तित्व व कर्तृत्व को भी हमें देखना चाहिए। यह भी सुयोग ही है कि आषाढ़ मास (जुलाई माह) में ही हमें चार महत्त्वपूर्ण अवसर मिल रहे हैं। तेरापंथ की स्थापना, आचार्यश्री भिक्षु का जन्म, आचार्यश्री तुलसी का महाप्रयाण और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का जन्मोत्सव—ये सभी इसी एक मास में आए हैं। जैन भारती के इसी अंक में अवसर-विशेष पर हमने कुछ सामग्री भी अपने पाठकों को दी है। हमारे विचार की शृंखला को यह सामग्री अग्रसर करेगी। हम अलग-अलग दृष्टिकोणों से उन बिंदुओं पर यदि सोचेंगे, जो हमारे सामाजिक स्वरूप को विद्रूप होने से बचा सके, तो हम एक सार्थक पायदान तक पहुंच सकेंगे।

हम विचार करें।

नैतिकता से इतर क्या अध्यात्म की कोई कसौटी हो सकती है? अपने निजी और सामाजिक जीवन में हम कितने नैतिक हैं, हमारे आध्यात्मिक होने का यही बड़ा आधार हो सकता है। महात्मा गांधी आध्यात्मिकता का मतलब ही नैतिकता मानते हैं। वे धर्म का अर्थ ही नीति में निहित मानते हैं और कहते हैं—'आत्मा की दृष्टि से पाली गई नीति धर्म है।' इस दृष्टि से एक व्यक्ति धर्म और संप्रदाय के वर्तमान फेरे से बाहर रहकर भी आध्यात्मिक और धार्मिक हो सकता है, बशर्ते कि वह नैतिक हो, नीतिपूर्ण हो।

हम स्वभावतः नैतिक कैसे हो सकते हैं? इसके लिए हमें अपनी आदतों, अपने क्रियाकलापों और अपनी शिक्षा-दीक्षा को देखना जरूरी है। यह माना जाता है कि नैतिक स्वभाव अथवा आदतें किसी यांत्रिकता के जरिए प्रक्षेपित नहीं की जा सकतीं, बल्कि इसके लिए उच्च स्तर की चेतना जरूरी होती है। नैतिक आदतें मनुष्य के चिंतन पर अवलंबित होती हैं। यह भी माना जाता है कि हमारी आस्थाएं और भावनाएं एक नैतिक गुण के रूप में स्थापित होंगी, तभी वे हमारी आदत और आचरण के ठोस अंग बन पाएंगी। इसके लिए सबसे अधिक असरदार साधन हमारा परिवेश हो सकता है। हमारी शिक्षा-दीक्षा को भी इसके एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में माना जा सकता है। यह भी माना गया है कि नैतिक आत्म-शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है जो नैतिक उत्तरदायित्वों को समझने व उसके निर्माण में सहायक हो सकती है। ऐसा होने से एक मनुष्य के रूप में जहां एक व्यक्ति-इकाई की संरचना नैतिक हो सकेगी, वहीं एक समूह के रूप में सामाजिक ढांचा भी नैतिकता की आधार-भित्ति पर अवलंबित होगा। व्यक्ति और समूह के रूप में यही नैतिकता प्रकारांतर से आध्यात्मिक स्वरूप ग्रहण कर सकेगी।

इन बातों से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि नैतिकता ही आध्यात्मिकता की कसौटी है और व्यक्ति या समाज के नैतिक होने के लिए शिक्षा-दीक्षा एक प्रबल आधार बन सकता है। इस दृष्टि से यदि हम जीवन-विज्ञान और प्रेक्षा-ध्यान की बारीकियों पर दृष्टिपात करें तथा इनकी चूकों और रिक्तियों की संपूर्ति की जाए तो एक ऐसी प्रविधि प्रस्थापित हो सकती है जो व्यक्ति को स्वभावतः नैतिक बनाने में सहायक हो सके। इस दृष्टि से आचार्यश्री महाप्रज्ञजी एक मार्गदर्शक के रूप में हमारे सम्मुख विद्यमान हैं। वे नैतिक आत्म-शिक्षा को अध्यात्म-विद्या कहते हैं तथा भिन्न-भिन्न पहलुओं से इस पर विचार करते हैं। अध्यात्म-विद्या अथवा नैतिक आत्म-शिक्षा अंततः व्यक्ति का आत्म-साक्षात्कार है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आत्म-साक्षात्कार के लिए गहरी आस्था व श्रद्धा को जरूरी मानते हैं और भगवान महावीर का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—जिनके पुरुषार्थ ने, लक्ष्य के प्रति जिनके समर्पण ने उनको सत्य का साक्षात्कार कराया। यही आत्म-साक्षात्कार है। महात्मा गांधी भी इसी सत्य के साक्षात्कार के लिए प्रतिबद्ध रहे। वे तो यह भी मानते रहे कि राजनीति के क्षेत्र में जो उनकी शक्ति थी, वह भी आध्यात्मिक प्रयोगों का ही प्रतिफलन था। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक-सार्वजनिक जीवन में भी आध्यात्मिक प्रयोग सफलता से किए जा सकते हैं।

आषाढ़ मास के चार महत्त्वपूर्ण अवसर इस बात के लिए अभिप्रेरित करें—हमें यही अभीप्सा करनी चाहिए।

—शुभू पटवा

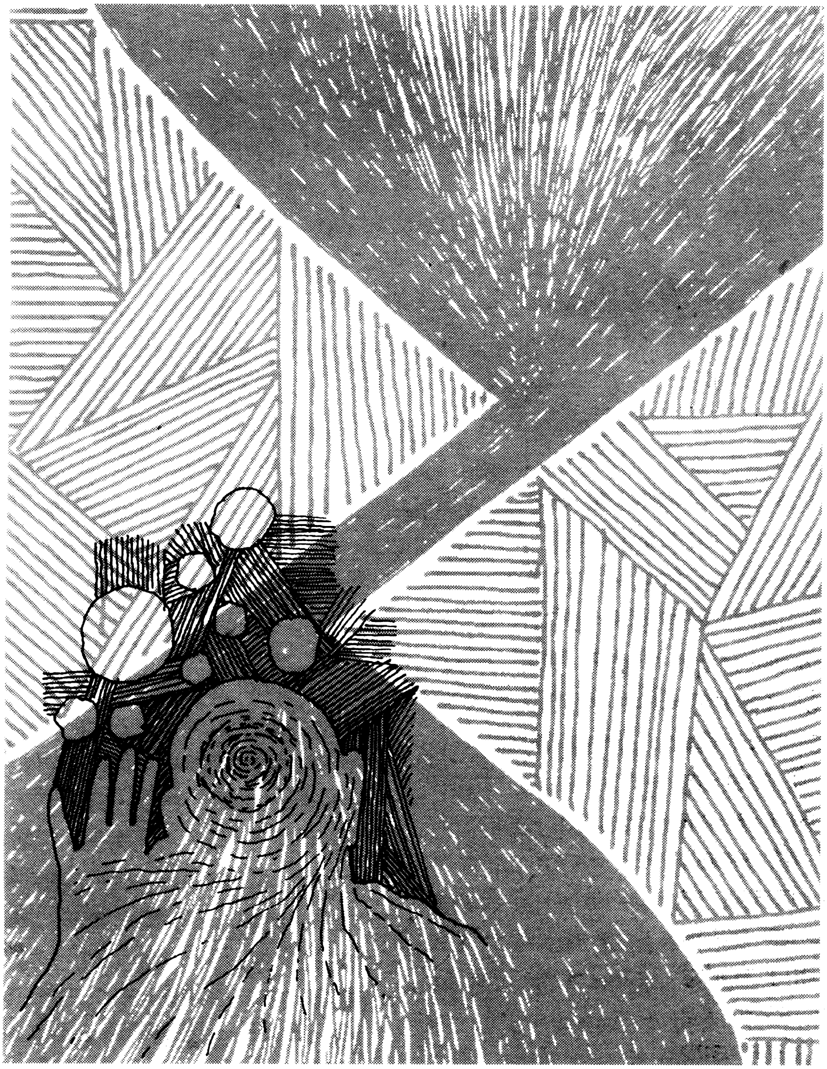

विमर्श

आज सारे संसार पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। इनके मूल में है परिग्रह की प्रबलता। मनुष्य भोग के साधनों का इतना संग्रह कर लेना चाहता है कि उसकी ज्वाला में आज वह स्वयं दग्ध हो रहा है। लेकिन, भोग के इस नक्कारखाने में अपरिग्रह की तूती की आवाज कौन सुनेगा? आधुनिकता और विकास के नाम पर जब भोग को ही जीवन का सर्वस्व मान लिया जाता है, तब व्यष्टि और समष्टि को रोगी होने से कैसे बचाया जा सकता है? इसके लिए एक ओर भोग पर संयम और दूसरी ओर दान की वृत्ति को और अधिक प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। भारत में, सारे संसार में, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आज सेवा-कार्य की और उसके लिए धन की इतनी आवश्यकता है कि उनके लिए अपरिग्रह के नए समाज-दर्शन को विकसित करना संभव हो सकता है। यदि लोभ या मोह के कारण ऐसी संस्थाएं भ्रष्ट हो जाती हैं तो उन पर निगरानी के लिए नए वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है।

—**प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद**

जैन धर्म और व्यावहारिक वेदांत : एक दृष्टि

❁ स्वामी ब्रह्मेशानन्द

'जैन धर्म में सम्यक् चरित्र को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। स्वामी विवेकानन्द ने भी चरित्र को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। वस्तुतः उनकी समग्र कार्ययोजना का केंद्र बिंदु था—चरित्र निर्माण। वे एक मनुष्य-निर्माणकारी, चरित्र गठनकारी शिक्षा चाहते थे। जैन धर्म के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच यमों का अणुव्रत अथवा महाव्रत के रूप में पालन करना चरित्र निर्माण की भूमिका है। ये पांच सद्गुण 'पातंजल योग सूत्र' में यम कहे गए हैं तथा सार्वभौमिक रूप से सर्वत्र सभी के लिए हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी इनका प्रतिपादन किया है। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण इनमें पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित थे तथा वेदांत का कभी भी इनसे मतभेद हो ही नहीं सकता। अंतर केवल किसी व्रत विशेष को अधिक महत्त्व देने या न देने के कारण हो सकता है। जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है, जबकि स्वामी विवेकानन्द सत्य और ब्रह्मचर्य को अधिक महत्त्व देते हैं।'

अति प्राचीनकाल से संस्कृति की दो धाराएं समानांतर रूप से प्रवाहित होती रही हैं। एक वैदिक या ब्राह्मण संस्कृति तथा दूसरी श्रमण या मागधी संस्कृति। प्रथम संस्कृति का उद्भव सिंधु नदी की घाटी अथवा आधुनिक मान्यता के अनुसार सरस्वती नदी की घाटी में हुआ था, जबकि श्रमण संस्कृति मगध (आधुनिक बिहार) में पनपी। इन दोनों संस्कृतियों में कुछ मौलिक मतभेद थे, जो आज तक बने हुए हैं।

वैदिक संस्कृति का केंद्र है ब्राह्मण एवं ब्राह्मणत्व। जबकि श्रमण संस्कृति का आधार है श्रमण, संन्यासी या भिक्खु। वैदिक संस्कृति में जीवनमुक्ति को जीवन का लक्ष्य माना गया है। कोई गृहस्थ भी जीवनमुक्त हो सकता है। वह मंत्र द्रष्टा ऋषि होता है एवं हिंदू शास्त्रों में ऐसे गृहस्थ ऋषियों के पर्याप्त दृष्टांत पाए जाते हैं। श्रमण संस्कृति के अनुसार मोक्ष के लिए संन्यास अनिवार्य है तथा आदर्श है—'अर्हत्', जिसने सभी प्रकार की क्रियाओं—शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक—पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। पुरुषार्थों में ब्राह्मण संस्कृति में धर्म को महत्त्व दिया गया है, जबकि श्रमण संस्कृति मोक्ष को अधिक महत्त्व देती है।

जैन धर्म एवं वेदांत के आलोचनात्मक विश्लेषण को समझने हेतु इन कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। यह भी समझ लेना चाहिए कि ब्राह्मण संस्कृति या हिंदू धर्म तथा वेदांत एक ही वस्तु नहीं हैं। इसी तरह श्रमण संस्कृति तथा जैन धर्म भी एक नहीं है। वेदांत और जैन धर्म, दोनों के ही दार्शनिक एवं व्यावहारिक पक्ष हैं। कुछ बातों में दोनों में समानता है, जबकि कुछ बातों में अंतर है। वेदांत से सामान्यतः आचार्य शंकर द्वारा प्रणीत अद्वैत वेदांत-दर्शन ही समझा जाता है।

वेदांत का शाब्दिक अर्थ है—वेद का अंत या सार। इस अर्थ के अनुसार वेदों के अंतिम भाग उपनिषद् में वर्णित सिद्धांत वेदांत कहलाएंगे। वेदांत मुख्यतः एक दर्शन प्रणाली है, जो हिंदू धर्म का आधार है। वेदांत या उपनिषदों की कई व्याख्याएं हैं जिनके अनुसार वेदांत के अनेक मतवाद हैं—यथा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि।

अब यदि हम यह मानें कि जैन धर्म का ऐतिहासिक विरोध हिंदू धर्म के क्रियाकांड से रहा है तथा वह ब्राह्मणत्व का विरोधी है, तो उपनिषदोक्त सिद्धांतों से जैन धर्म का विरोध नहीं होना चाहिए। स्वयं उपनिषदों में वेदों के क्रियाबहुल कर्मकांडों की निंदा करके आत्मा के चैतन्य स्वरूप तथा उसके साक्षात्कार अथवा मोक्ष को जीवन के लक्ष्य के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस मौलिक सिद्धांत के साथ जैन धर्म का कोई मतभेद नहीं हो सकता।

जैन धर्म के मौलिक सिद्धांत एवं वेदांत

जैन धर्म और वेदांत, दोनों ही आत्मा को मानव एवं सभी इतर जीव-जंतुओं के वास्तविक-स्वरूप के रूप में स्वीकार करते हैं। यह आत्मा देह, मन, प्राण आदि जड़ पदार्थों से पृथक है। इन्हीं को जैन धर्म में पुद्गल कहा गया है। वेदांत के अनुसार जीवात्मा अविद्या अथवा अज्ञान के कारण देहादि के साथ संयुक्त होकर अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है। जैन धर्म भी मिथ्यात्व को बंधन के मुख्य कारण के रूप में स्वीकार करता है, जबकि वह अविरति, प्रमाद, कषाय और भोग (देहादि की क्रिया) को भी बंधन का कारण मानता है।

जैन धर्म और वेदांत, दोनों में ही कर्मवाद को स्वीकार किया गया है। जैन धर्म में कर्म का अति विशद विश्लेषण पाया जाता है। पूर्व-जन्म के कर्मों के कारण उत्पन्न आत्मा के बंधन को दूर करने हेतु दो मुख्य उपाय बताए गए हैं—1. संवर, 2. निर्जरा। 'संवर' का अर्थ है—नए कर्मबंधनों को बनने से रोकना और 'निर्जरा' का अर्थ है—पुराने बंधनों को दूर करने का प्रयत्न करना। निर्जरा के उपाय हैं—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। ये तीनों जैन धर्म के त्रिरत्न कहलाते हैं। जैन धर्म में तप को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और सामान्यतः उसकी गिनती इन त्रिरत्नों के साथ चतुर्थ महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में की जाती है। सम्यक् दर्शन का अर्थ है—सही सिद्धांतों में श्रद्धा।

स्वामी विवेकानन्द भी श्रद्धा को साधना में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। जैन धर्म में शुद्ध गुरु, शुद्ध देव और शुद्ध धर्म में श्रद्धा को सम्यक् दर्शन कहा गया है, लेकिन स्वामी विवेकानन्द अपने-आप में विश्वास को कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। उन्होंने तो यहां तक कहा है कि पुराना धर्म कहता है कि वह नास्तिक है—जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है कि वह नास्तिक है—जो अपने-आप में विश्वास नहीं करता। अपने-आप में विश्वास की बात जैन धर्म में भी स्वीकार्य है। वह जगत की सृष्टि, सृजन और पालन के रूप में किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करता। वह तीर्थंकरों की ईश्वर या देव के रूप में उपासना करता है। जैन धर्म के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने पुरुषार्थ एवं स्वप्रयत्न द्वारा तीर्थंकरत्व को प्राप्त कर सकता है। यह बात स्वामी विवेकानन्द प्रणीत वेदांत के अनुरूप ही है। स्वामी विवेकानन्द अपने शिष्यों से कहा करते थे कि तुम सभी मेरे समान ही नहीं, मुझसे भी महान बन सकते हो।

जैन धर्म में सम्यक् चरित्र को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। स्वामी विवेकानन्द ने भी चरित्र को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। वस्तुतः उनकी समग्र कार्ययोजना का केंद्र बिंदु था—चरित्र निर्माण। वे एक मनुष्य-निर्माणकारी, चरित्र गठनकारी शिक्षा चाहते थे। जैन धर्म के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच यमों का अणुव्रत अथवा महाव्रत के रूप में पालन करना चरित्र निर्माण की भूमिका है। ये पांच सद्गुण 'पातंजल योग सूत्र' में यम कहे गए हैं तथा सार्वभौमिक रूप से सर्वत्र सभी के लिए हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी इनका प्रतिपादन किया है। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण इनमें पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित थे तथा वेदांत का कभी भी इनसे मतभेद हो ही नहीं सकता। अंतर केवल किसी व्रत विशेष को अधिक महत्त्व देने या न देने के कारण हो सकता है। जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है, जबकि स्वामी विवेकानन्द सत्य और ब्रह्मचर्य को अधिक महत्त्व देते हैं।

सम्यक् ज्ञान को वेदांत में सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। अज्ञान का नाश ज्ञान के द्वारा ही संभव है। वेदांत की मुख्य विद्या 'ज्ञानयोग' में ज्ञानलाभ ही सर्वोच्च लक्ष्य है। इस विषय में जैन धर्म और वेदांत में थोड़ा अंतर है। अद्वैत वेदांत के अनुसार व्यष्टि जीव और समष्टि, परमात्मा या ब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं। लेकिन, जैन धर्म यह मानता है कि जीव अनेक हैं और यह अनेकता सदा बनी रहती है, तथापि यह अवश्य सत्य है कि प्रत्येक जीव अपनी विशुद्ध दशा में शुद्ध-बुद्ध-नित्यमुक्त स्वभाव है।

ज्ञानयोग की मुख्य साधना है त्वं एवं तत् पद का शोधन। त्वं पद शोधन का अर्थ है—अपने व्यक्तिगत सीमित स्वरूप का अनुसंधान, यह जानने का प्रयत्न करना कि 'मैं कौन हूं।' ऐसा विचार करते-करते व्यक्ति

स्वयं को देह, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार आदि से पृथक करता हुआ अंततः अपने विशुद्ध स्वरूप को पहचान जाता है जो इन सभी पुद्गलों से पृथक है। इस प्रक्रिया तक वेदांत और जैन धर्म में कोई मतभेद नहीं है।

साधना की दृष्टि से जैन धर्म निवृत्तिपरक, ध्यान-प्रधान धर्म है। उसमें ध्यान को सर्वोच्च महत्त्व दिया गया है। तीर्थंकरों एवं अन्यान्य संतों की मूर्तियां—चाहे वे पद्मासन में आसीन हों या खड़े हों—सामान्यतः ध्यानस्थ-मुद्रा में ही दर्शायी जाती हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपनी व्यावहारिक वेदांत की योजना में ध्यान को बहुत महत्त्व दिया है। वे स्वयं एक ध्यानसिद्ध योगी थे एवं चित्त की एकाग्रता को सभी क्षेत्रों में सफलता की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुंजी मानते थे। जैन धर्म में कई प्रकार के ध्यान बताए गए हैं तथा अननुपूर्वी जैसी विधियों का भी प्रचलन किया गया है जो विक्षिप्त-मन को एकाग्र करने में बहुत सहायक होती हैं।

जैन धर्म के दो महत्त्वपूर्ण, किंतु परस्पर संबंधित सिद्धांत हैं—अनेकांतवाद और स्याद्वाद। इन्होंने जैन धर्म को उदार और व्यापक बनाया है। इनके अनुसार किसी भी वस्तु, स्थिति के अवलोकन के कई दृष्टिकोण हो सकते हैं तथा वे सभी दृष्टिकोण अपने-अपने संदर्भ के अनुसार सत्य हो सकते हैं, लेकिन ये सारे सत्य आंशिक सत्य ही होते हैं, पूर्ण नहीं। जिस प्रकार बहुत से अंधे एक हाथी के विभिन्न अंगों को छूकर उसकी भिन्न-भिन्न धारणा करते हैं, जो आंशिक रूप से सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं होतीं, उसी प्रकार विभिन्न मतवाद सत्य के संबंध में भिन्न-भिन्न सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं, जो आंशिक रूप से सत्य होते हुए भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं होते। अनेकांतवाद को स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी भी अनुदार नहीं हो सकता। यह सिद्धांत श्रीरामकृष्ण के 'जतोमत : ततोपथ' के सिद्धांत से मिलता-जुलता है। श्रीरामकृष्ण अनेक उदाहरणों द्वारा यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि ईश्वर के कई रूप हो सकते हैं और वह निराकार भी हो सकता है। यही नहीं, उसको पाने के विभिन्न मार्ग भी हो सकते हैं, जो सभी सत्य और प्रभावी हो सकते हैं। अतः मतवाद को लेकर झगड़ा करना वृथा है। अपने मत को दृढ़ता से पकड़े रहो, पर दूसरे के मत की निंदा न करो।

व्यावहारिक वेदांत और जैन धर्म

आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द ने वेदांत को एक नई दिशा प्रदान की है, जिसे व्यावहारिक वेदांत की संज्ञा भी दी जाती है। सर्वप्रथम तो उन्होंने धर्म की एक नई परिभाषा प्रदान की—'प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म (दिव्य) है। अंतःप्रकृति एवं बहिर्प्रकृति के नियमन द्वारा इस देवत्व को व्यक्त कर मुक्त होना जीवन का लक्ष्य है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग अथवा राजयोग— इनमें से एक, अनेक अथवा सभी के अनुष्ठान द्वारा मुक्त हो जाओ। यही धर्म का सार-सर्वस्व है। पुस्तकें, मतवाद, मंदिर, क्रिया-अनुष्ठान आदि अन्य बातें गौण हैं।'

क्या स्वामी विवेकानन्द प्रणीत वेदांत के इन सिद्धांतों के साथ जैन धर्म के सिद्धांतों का कोई मतभेद हो सकता है? जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, जैन धर्म भी आत्मा के चैतन्यत्व को स्वीकार करता है और उसकी मुक्ति को लक्ष्य मानता है। हमने यह भी देखा कि जैन धर्म में राजयोग की पद्धति को अधिक महत्त्व दिया गया है। मंदिरमार्गी एवं दिगंबर जैन संप्रदायों में भक्ति को भी एक साधन, एक पद्धति माना गया है। मंदिरों में मूर्तियों की पूजा-आराधना-स्तवन पाठादि का प्रचलन है और जैन भक्तों को इससे बहुत लाभ भी होता है। जैन धर्म में ज्ञान-विचार पर्याप्त मात्रा में है तथा जैन धर्म ने प्रकांड विद्वानों को जन्म दिया है। जैन वाङ्मय का एक अति विशाल भंडार है।

जहां तक कर्मयोग का प्रश्न है, जैन धर्म में कर्मयोग को वह स्थान नहीं दिया गया है जो स्थान 'गीता' में उसे प्राप्त है। स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदांत की मूल भित्ति है—शिवज्ञान से जीव सेवा। जैन धर्म में सेवा को वैयावृत्त नामक एक तप का स्थान दिया गया है और यह सेवा सामान्यतः साधु और साध्वियों की सेवा तक ही सीमित रहती है। जैन धर्म सभी प्रकार के कर्मों को बंधन का कारण मानता है, भले ही गृहस्थों द्वारा दानादि-क्रियाओं को श्रेष्ठ क्रियाएं माना गया है। कर्म से चित्तशुद्धि को महत्त्व नहीं दिया गया है। निर्जरा का मुख्य उपाय तप है, न कि कर्म।

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने क्रिया, अनुष्ठान, मतवाद, मंदिर आदि को धर्म के गौण अंगों की संज्ञा दी है, उसी प्रकार जैन धर्म में भी बाह्याचरण के स्थान पर आंतरिक भाव को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसे जैन धर्म में 'व्यवहार नय' और 'निश्चय नय' की संज्ञा दी गई है। किसी व्यक्ति का व्यवहार भले ही अच्छा हो, लेकिन यदि नीयत बुरी है तो वह शुभ कर्म भी प्रभावशाली नहीं हो सकता। यह सिद्धांत वेदांत के

कर्मयोग से कुछ मिलता-जुलता है, जिसमें कहा गया है कि निर्लिप्त होकर कर्म करने वाला व्यक्ति कर्म के फल से प्रभावित नहीं होता। जैन धर्म में हिंसा के भी दो प्रकार बताए गए हैं—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा। भाव हिंसा अर्थात् मानसिक विद्वेष को अधिक बुरा कहा गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत वेदांत को नैतिकता की भित्ति बनाया है। उनके अनुसार हमें दूसरों की सेवा इसीलिए करनी चाहिए कि वह व्यक्ति हमसे भिन्न नहीं है तथा किसी को कष्ट इसलिए नहीं देना चाहिए कि उसको कष्ट देना स्वयं को ही कष्ट देना है। भगवान महावीर ने भी यही बात कही है : जिसे तू मारना चाहता है, तू वही है। जिसे तू बंधन में डालना चाहता है, तू वही है। किसी भी प्राणी को मारना स्वयं को ही मारना है। प्राणियों के प्रति दया स्वयं ही के प्रति दया है। भगवान महावीर का यह सिद्धांत अद्वैत वेदांत का संकेत करता है।

वेदांत के अति प्राचीन होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में वेदांत का स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित सिद्धांत नवीनतम है। वस्तुतः यह कहना ही उचित होगा कि स्वामी विवेकानन्द ने पुरातन व्यावहारिक वेदांत की आधुनिक युग के अनुरूप एक नई व्याख्या भर की है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि जैन धर्म का परंपरागत हिंदू धर्म से व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी व्यावहारिक वेदांत के साथ उसकी समानताएं अधिक और मतभेद कम हैं। स्वामी विवेकानन्द की वेदांत संबंधी परिभाषा अत्यंत व्यापक है। उनके अनुसार धर्म का अर्थ वेदांत ही है और वेदांत के इस व्यापक दायरे में जैन, ईसाई, बौद्ध, इस्लाम—सभी धर्मों का समावेश हो जाता है। इस व्यापक परिभाषा को स्वीकार न करने पर भी—जैसा कि हम कह चुके हैं—जैन धर्म और वेदांत में काफी समानताएं हैं। यही नहीं, दोनों की पद्धतियां एक-दूसरे की परिपूरक हो सकती हैं, जैसा कि होना ही चाहिए। वेदांत जैन धर्म से कुछ सीख सकता है और जैन धर्म भी वेदांत से—अपनी मौलिकता बनाए रखते हुए—लाभ उठा सकता है।

उदाहरण के लिए व्यावहारिक वेदांत के 'शिव-ज्ञान से जीवसेवा' के सिद्धांत को जैन धर्म आसानी से आत्मसात् कर सकता है। क्योंकि आत्मा के चैतन्य, नित्य-शुद्ध-बुद्ध स्वरूप में तो वह विश्वास करता ही है। दूसरी ओर आधुनिक व्यावहारिक वेदांतवादी जैन धर्म में तप पर दिए गए महत्त्व से लाभ उठा सकते हैं। क्षमापना एवं नवकार मंत्र का भी अधिक व्यापक उपयोग जैनेतर वेदांती भी कर सकते हैं। संवत्सरी के दिन सभी जैन जन संसार के समस्त प्राणियों से क्षमायाचना करते हैं तथा स्वयं भी सभी को यह कहकर क्षमा करते हैं :

खामेमि सव्व-जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केण इ।।

अर्थात् 'मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सभी से मैत्री है, किसी से भी वैर नहीं है।' नवकार मंत्र भी एक अति पवित्र, सुंदर एवं उदार मंत्र है, जिसमें संसार के समस्त संतों, उपाध्यायों, आचार्यों, महापुरुषों, अवतारों, पैगंबरों एवं सिद्ध महामनाओं को प्रणाम किया गया है। वेदांतियों को ऐसे शुभ मंत्र को स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है।

सच्चा धर्म मतभेद नहीं सिखाता। वह प्राणियों को एक-दूसरे के निकट लाता है। वेदांत और जैन धर्म, दोनों का उद्देश्य यही है। यही कारण है कि भारत में जैन धर्म और आधुनिक नववेदांतवादियों के बीच सदा-सर्वदा मैत्री एवं सद्भाव बना रहा है और निरंतर बढ़ता जा रहा है। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500–2000 शब्दों से लेकर 2500–3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुलस्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

व्यक्ति, समाज और नैतिकता

❀ डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

'जिस समाज की नींव सहयोग एवं परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित होती है, उस समाज का विकास अवश्य होता है। समाज के विकास का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है—संवेदनशीलता का विकास। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि जब तक यह सूत्र नहीं जुड़ता, तब तक सही अर्थ में समाज बनता ही नहीं। संवेदनशीलता से तात्पर्य है—एक-दूसरे के कष्ट में सहभागिता की अनुभूति। समाज के विकास का तीसरा सूत्र है—वहां रहने वाले व्यक्तियों की स्वशक्ति का जागरण। प्रत्येक व्यक्ति में अपार संभावनाएं रहती हैं। यदि उन संभावनाओं को साकार कर लें, तो समाज के विकास में चार चांद लग सकते हैं। स्वस्थ सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार है—समता और मैत्री का अनुभव। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मानना है कि छोटे-से-छोटे व्यक्ति को—अपने नौकर को, अपने कर्मचारी को, अपने किसी भी व्यक्ति को—एक दृष्टि से देखना, चैतन्य की दृष्टि से अनुभव करना ही समता और मैत्री की दृष्टि है। इससे सामाजिक जीवन प्रमाद होता है।'

व्यक्ति और समाज के संबंधों की मीमांसा जब की जाती है तो हमारे सम्मुख प्रमुखतया नैतिक दर्शन रहता है। नीतिशास्त्र का संबंध भी मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों से ही होता है, जिन्हें समाज में रहते हुए वह करता है। अन्य व्यक्तियों का जीवन भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित होता है और ऐसी स्थिति में यह कहना उचित ही होगा कि व्यक्ति और समाज के संबंधों की बात नीतिशास्त्र का एक मुख्य अंग है।

व्यक्ति और समाज

नीतिज्ञ जन समाज में रहने वाले व्यक्तियों के ऐच्छिक कर्मों को ही नैतिक निर्णय का विषय मानते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि नीतिशास्त्र का संबंध व्यक्ति के उन्हीं कर्मों से है, जो वह समाज में रहते हुए करता है। अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह व्यक्ति और समाज की समस्या नीतिशास्त्र की भी एक प्रमुख समस्या है।[1] नीतिशास्त्र के अंतर्गत व्यक्ति और समाज को लेकर मुख्य तीन प्रश्न उठते हैं—

1. व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है तथा समाज गौण। समाज व्यक्ति द्वारा प्रभावित होता है। 2. समाज से ही व्यक्ति का विकास संभव हो सकता है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई स्थान नहीं हो सकता। 3. व्यक्ति और समाज, दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। व्यक्ति और समाज एक-दूसरे की अपेक्षा महसूस करते हैं।

इन्हीं तीन प्रश्नों को लेकर प्राचीनकाल से वर्तमान तक नीतिज्ञों ने अपने-अपने अभिमत प्रस्तुत किए हैं। कुछ विचारकों ने व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है तो कुछ के अनुसार व्यक्ति स्वयं नितांत महत्त्वहीन तथा सामाजिक हित का साधन मात्र ही नहीं है, जिसका समाज अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। समाज से संबंधित होते हुए भी व्यक्ति अपने कर्मों तथा विचारों द्वारा उसे प्रभावित तथा परिवर्तित भी कर सकता है।[2] समय-समय पर महान विचारकों एवं ऐतिहासिक पुरुषों के विचारों एवं क्रिया-कलापों से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति का समाज में स्वतंत्र स्थान भी है। बुद्ध, महावीर, ईसामसीह, कार्ल मार्क्स, मैकियावली, बिस्मार्क, गांधी आदि ऐसे व्यक्तित्व हुए हैं, जिन्होंने समाज को बदल डाला था। इससे यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति

का स्थान नगण्य नहीं है। इस मत को स्वीकार करने वालों में हाब्स, लॉक और रूसो प्रमुख हैं।[3]

व्यक्ति पारस्परिक संबंधों से रहित, आत्मपूर्ण और स्वतंत्र इकाई है। हाब्स के अनुसार आदिकाल में प्राकृतिक अवस्था थी। व्यक्ति-व्यक्ति की स्वतंत्रता एक-दूसरे के लिए असह्य हो गई। अतः आत्म-रक्षण की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्य ने अपनी इच्छा का समाज स्थापित किया।[4] इसी तरह रूसो और लॉक ने भी समाज में व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार किया था।

दूसरे मत के अनुसार व्यक्ति महत्त्वहीन, उपेक्षित एवं नगण्य है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति अपनी समस्त इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अंततः समाज पर ही निर्भर रहता है। समाज के बिना व्यक्तित्व-निर्माण एवं विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती।[5] व्यक्ति समाज में ही उत्पन्न होता है, पलता है, हंसना-बोलना सीखता है—इसलिए समाज उसके लिए मुख्य होता है। इसीलिए अरस्तु ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते हुए कहा है—'जो मनुष्य समाज में नहीं रहता, वह वास्तव में मनुष्य न होकर या तो पशु है या देवता।'[6] व्यक्ति अपने जीवन में जिन विश्वासों, नैतिक आदर्शों एवं अच्छाइयों के अनुरूप व्यवहार करता है, वे सब उसे समाज से ही हस्तगत होते हैं। नैतिकता का प्रत्यय समाज में ही संभव है। अकेले व्यक्ति को नैतिकता की कोई अपेक्षा नहीं होती है। समाज के बिना नैतिकता का प्रत्यय अनावश्यक एवं निरर्थक हो जाता है। समाज के बिना व्यक्ति के कर्मों के शुभत्व और अशुभत्व का मूल्यांकन नहीं हो सकता। अतः यह कहा जा सकता है कि समाज के अभाव में व्यक्ति के अस्तित्व, विकास एवं नैतिक उत्कर्ष की संभावना नहीं है।

उपर्युक्त दोनों मत व्यक्ति और समाज की एकांगी व्याख्या करते हैं। प्रथम मत में समाज की कोई आवश्यकता नहीं है, तो दूसरे के अनुसार समाज के अभाव में व्यक्ति नगण्य है। पहला समाज की महत्ता को नकारता है, तो दूसरा व्यक्ति की श्रेष्ठता को। अतः दोनों आंशिक सत्य हैं, पूर्ण सत्य नहीं।[7] न तो व्यक्ति महत्त्वहीन है और न ही समाज अनावश्यक। इस संबंध में संभवतः अधिक संतुलित दृष्टिकोण यही है कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के विरोधी न होकर परस्पर पूरक तथा एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।[8]

आत्मपूर्णतावाद के समर्थक हीगेल, ग्रीन, ब्रेडले आदि दार्शनिकों ने इसी संतुलित दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। इनके अनुसार व्यक्ति और समाज में कोई विरोध नहीं है। समाज के हित में व्यक्तियों का हित निहित है तथा व्यक्ति-व्यक्ति के विकास से समाज का विकास निश्चित है। इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए ब्रेडले का कथन है—'नैतिक कर्तव्यों से युक्त मनुष्य के जीवन का रूप मुख्यतः साकल्य की उस व्यवस्था में उसके स्थान से बनता है जो राज्य है और राज्य अंशतः अपने कानूनों और संस्थाओं, और उससे भी अधिक अपनी चेतना द्वारा मनुष्य को उस प्रकार का जीवन प्रदान करता है, जिस प्रकार का जीवन वह व्यतीत करता है, और उसे व्यतीत करना चाहिए।'[9] व्यक्ति और समाज एक-दूसरे पर निर्भर हैं। समाज को अच्छे व्यक्ति चाहिए तो व्यक्ति को अच्छा समाज चाहिए। दोनों में विरोध होने से दोनों की ही हानि होती है।

इसी क्रम में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के नैतिक विचारों को देखा जा सकता है। उनके विचारों में व्यक्ति और समाज संबंधी इस तृतीय मत की स्वीकृति दिखलाई देती है। उनके अनुसार व्यक्ति और समाज का एक अन्योन्याश्रित संबंध व क्रम है। व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति संबंधित है। व्यक्ति बीज है। बीज से वृक्ष बनता है और उससे फिर बीज निष्पन्न होते हैं। दोनों का संबंध जुड़ा हुआ है। बीज को सुधारें तो अगले बीज सशक्त होंगे।[10] आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का अनेकांतवाद में विश्वास है। अनेकांतवाद व्यक्ति और समाज की सापेक्ष व्याख्या करता है। व्यक्ति में वैयक्तिकता और सामाजिकता, दोनों के मूल तत्त्व निहित हैं। क्षमताओं का होना व्यक्ति की वैयक्तिकता है और उनका अभिव्यक्त होना व्यक्ति की सामाजिकता है, किंतु जहां व्यक्ति की वैयक्तिकता के भाव उभरते हैं, वहां सामाजिक वैषम्य भी प्रसरित होता है, व्यक्तिगत संग्रह बढ़ता है, अहं का विकास होता है, समस्त सामाजिक व्यवस्था चरमरा कर रह जाती हैं, अतः व्यक्ति की संरचनात्मक क्षमता अभिव्यक्त हो, जिसमें सामाजिकता है—आवश्यक है।[11] इसी तरह, चूंकि समाज व्यक्तियों का समूह है, तो उसमें वैयक्तिकता के भाव सामूहिक रूप में हैं और समाज है तो सामाजिकता भी है। समाज और व्यक्ति के संबंध जलराशि और जलकण के समान प्रतीत होते हैं। समाज और व्यक्ति में वैसी ही सजातीयता है जैसी जलराशि और

जलकण में है। समाज और व्यक्ति के संबंध का निष्कर्ष है—एक जातीयता से निष्पन्न एकात्मकता।[12]

व्यक्ति समाज से एकात्मक है। कोई भी एकात्मकता अमर्यादित नहीं हो सकती। जहां सामाजिक सापेक्षता है, वहां व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है और समाज व्यक्ति की पूर्णता। किंतु, जिस परिधि में सामाजिक सापेक्षता नहीं होती, वहां व्यक्ति सामाजिक रेखा का एक बिंदु है।[13] यह निरपेक्षता अध्यात्म की परिधि में ही प्राप्त होती है। व्यक्ति से जुड़ा हुआ एक पक्ष है—संवेदना। संवेदन वैयक्तिक होता है, कभी सामूहिक नहीं होता। सुख, दुख का संवेदन वैयक्तिक होता है। संवेदना नितांत वैयक्तिक है।[14]

संवेदन के साथ जुड़ी होती है सहानुभूति और सहयोग। ये सामाजिक तत्त्व हैं। सहानुभूति और सहयोग वैयक्तिक नहीं हो सकते। व्यक्ति की संवेदना वैयक्तिक है तो सहानुभूति और सहयोग सामाजिक।[15]

प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीमा में व्यक्ति है और सामाजिक संकल्पों में वह समाज है। कोई भी व्यक्ति सामाजिक संपर्कों से कटकर जी नहीं सकता और समाज का भविष्य, समाज का भाग्य व्यक्ति के साथ जुड़ा होता है; जैसे सेनापति के निर्णयों पर सेना की हार-जीत आधारित होती है। जिस व्यक्ति का मस्तिष्क, नाड़ी-तंत्र और ग्रंथि-तंत्र स्वस्थ नहीं, वह व्यक्ति सही ढंग से सोच नहीं सकता। उसके गलत निर्णयों से समाज दिग्भ्रांत होता है और नष्ट भी हो सकता है।[16]

जिस समाज के व्यक्तियों में कर्तव्यनिष्ठा, प्रमाणिकता, सहिष्णुता, आत्मानुशासन और विनम्र व्यवहार है, वह समाज उत्तरोत्तर विकास करता जाता है।[17] यदि ऐसा नहीं है तो व्यक्ति समाज में रहता हुआ भी असामाजिक ही होता है। क्या शोषण करने वाला असामाजिक नहीं है? अपराध करने वाला असामाजिक नहीं है? मनुष्य के प्रति घृणा करने वाला क्या सामाजिक है? मनुष्य को अछूत मानने वाले को क्या सामाजिक कह सकते हैं? अर्थात् वह व्यक्ति समाज में रहकर भी सामाजिक नहीं होता, जो व्यक्ति का व्यक्ति की दृष्टि से मूल्यांकन नहीं करता।[18] एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का अंकन उपयोगिता की दृष्टि से करता है। जब तक उसकी उपयोगिता होती है तब तक उसके प्रति मृदु व्यवहार करता है और जब उसकी उपयोगिता नहीं रहती तब उसके साथ क्रूर व्यवहार करने लग जाता है। किंतु, जब व्यक्ति का अंकन व्यक्ति की दृष्टि से होता है, तब व्यक्ति सामाजिक हो जाता है।[19]

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जीवन की दो पद्धतियों को मानते हैं[20]—1. वैयक्तिक जीवन पद्धति और 2. सामाजिक जीवन पद्धति। ये दोनों पद्धतियां बिल्कुल पृथक नहीं हैं। दोनों का गमन साथ-साथ होता है। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया असामाजिक नहीं होता और न ही कोई पूर्णतया अवैयक्तिक ही होता है। प्रायः व्यक्तियों का जीवन सामाजिक ही होता है। वैयक्तिक जीवन जीने वाले कुछ तपस्वी ही मिलेंगे जो सब-कुछ छोड़कर पहाड़ों, गुफाओं एवं कंदराओं में बैठकर साधना करते हैं, किंतु ऐसे लोग विरले ही होते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी मानते हैं कि साधना भी सामाजिक पहले और वैयक्तिक बाद में होती है। वैयक्तिक साधना, साधना की पराकाष्ठा है। प्रारंभ में साधक का लक्ष्य साधना से जीवन, जीवन-धारा, आचार-व्यवहार और आस्था के बदलने का होता है।[21]

तात्पर्य यह है कि जीवन जीने वाले व्यक्ति के लिए सामाजिक जीवन अत्यावश्यक है। यदि सामाजिक जीवन स्वस्थ, शांतिप्रद एवं आनंदप्रद होता है तो वैयक्तिक जीवन अपने-आप चमकता है।[22] इसलिए सामाजिक जीवन को समस्यारहित बनाने का प्रयास सबका होना चाहिए। यों तो यह माना जाता है कि सामाजिक जीवन के लिए संघर्ष अनिवार्य है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि सामाजिक जीवन हो और संघर्ष न हो। जहां एक से अधिक व्यक्ति होंगे, वहां संघर्ष एवं टकराव की आशंका बनी रहती है। यदि इस टकराव पर काबू पा लिया जाए तो सामाजिक जीवन प्रसन्नता और समृद्धि का जीवन हो जाता है। सामाजिक जीवन को अभिशप्त करने वाले यों तो कई प्रकार के विघ्न हैं, किंतु आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुख्यतया 7 विघ्नों का उल्लेख किया है[23]—1. हिंसा का संस्कार, 2. कर्म का संस्कार या जीन, 3. परिस्थिति या वातावरण, 4. शरीरगत रसायन, 5. अनास्था, 6. अप्रयत्न, 7. प्रशिक्षण और अनुसंधान की कमी। आचार्यश्री मानते हैं कि जिस समाज के लोगों में हिंसा का भाव होगा, बुरे संस्कार होंगे, वातावरण दूषित होगा तो सामाजिक जीवन के लिए खतरे की घंटी की संभावना रहेगी ही। सामाजिक जीवन में प्रगाढ़ता विश्वास के कारण ही आती है। अनास्था सामाजिक जीवन को खंडशः करने में कोई कसर नहीं

छोड़ती है। समाज के लोगों का अपुरुषार्थी होना समाज के विकास में बाधक है। प्रयोग और प्रशिक्षण के अभाव में भी सामाजिक जीवन दूषित होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे तंत्र हैं, जिनकी अस्वस्थता को भी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी सामाजिक जीवन के लिए खतरा मानते हैं। ये तंत्र मुख्यतया पांच है।[24]— 1. अर्थतंत्र, 2. राजतंत्र, 3. व्यवसाय-तंत्र, 4. शिक्षातंत्र, 5. धर्मतंत्र। जिस समाज में ये तंत्र स्वस्थ एवं सबल होते हैं, वह समाज उन्नति के शिखर का संस्पर्श करता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने व्यक्ति और समाज के संबंधों के खतरों की ओर ही ध्यान आकृष्ट नहीं किया है, अपितु दोनों के संबंधों के साधक सूत्रों पर भी प्रकाश डाला है। ये सूत्र इस प्रकार हैं—1. पारस्परिक चेतना का विकास, 2. संवेदनशीलता का विकास, 3. स्वशक्ति का जागरण, 4. समता और मैत्री का विकास, 5. समस्त तंत्रों का संतुलन, 6. साधन-साध्य शुद्धि।

समाज के विकास का महत्त्वपूर्ण सूत्र है— पारस्परिक चेतना का विकास। जिस समाज में व्यक्ति ने अपने वैयक्तिक स्वार्थ पर अधिक ध्यान दिया, वह समाज सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक, सभी दृष्टियों से पिछड़ जाता है। किंतु, जिस समाज की नींव सहयोग एवं परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित होती है, उस समाज का विकास अवश्य होता है। समाज के विकास का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है—संवेदनशीलता का विकास। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि जब तक यह सूत्र नहीं जुड़ता, तब तक सही अर्थ में समाज बनता ही नहीं। संवेदनशीलता से तात्पर्य है—एक-दूसरे के कष्ट में सहभागिता की अनुभूति। समाज के विकास का तीसरा सूत्र है—वहां रहने वाले व्यक्तियों की स्वशक्ति का जागरण।[25] प्रत्येक व्यक्ति में अपार संभावनाएं रहती हैं। यदि उन संभावनाओं को साकार कर लें, तो समाज के विकास में चार चांद लग सकते हैं। स्वस्थ सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार है—समता और मैत्री का अनुभव।[26] आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मानना है कि छोटे-से-छोटे व्यक्ति को—अपने नौकर को, अपने कर्मचारी को, अपने किसी भी व्यक्ति को—एक दृष्टि से देखना, चैतन्य की दृष्टि से अनुभव करना ही समता और मैत्री की दृष्टि है। इससे सामाजिक जीवन प्रगाढ़ होता है। समाज में कभी भी किसी की अवमानना जहरीले सांप की तरह प्रलयंकारी बना देती है। अच्छे से अच्छे व्यक्ति अपमान के घूंट को पी नहीं पाते। आचार्यश्री इस संदर्भ में चाणक्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि नंदराज द्वारा अपमानित चाणक्य ही नंदवंश को उजाड़ने का निमित्त बना।

सामाजिक जीवन की सुरक्षा में तंत्रों—अर्थतंत्र, राजतंत्र, व्यवसाय-तंत्र, शिक्षातंत्र, धर्मतंत्र का संतुलन भी अत्यावश्यक है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार अर्थतंत्र के साथ अपरिग्रह, राजतंत्र के साथ भयरहित व्यवस्था, व्यवसाय-तंत्र के साथ प्रामाणिकता, नैतिकता और शिक्षातंत्र के साथ सर्वांगीणता उभरे। इसी तरह धर्मतंत्र के साथ चारित्रिक उत्थान जुड़े—तभी ये सारे तंत्र समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं। जिस सामाजिक जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता पर ध्यान नहीं दिया जाता, अपितु येन-केन-प्रकारेण लक्ष्य की ही प्रधानता रहती है, वह सामाजिक जीवन हिंसा, मारकाट का शिकार होता ही है। उस समाज में अनैतिकता हावी होती ही है। इसलिए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अच्छे समाज के लिए साध्य के साथ साधन-शुद्धि की महत्ता को प्रतिपादित किया है।[27] महात्मा गांधी ने भी साधन की पवित्रता को हर परिस्थिति में अत्याज्य बतलाया है। उनका मानना था कि समाज में अशुद्ध साधन के प्रयोग से सामाजिक व्यवस्था चरमरा जाती है।[28]

अतः समाज में वैयक्तिकता और सामाजिकता अभिन्न हैं। जिस समाज में व्यक्तियों का केवल बौद्धिक विकास होता है, वहां व्यक्ति समाज से कटता चला जाता है और जहां के व्यक्तियों का बौद्धिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास होता है—वहां के व्यक्तियों में सामाजिकता के दर्शन भी होते हैं। ऐसे संतुलित विकास के आधार पर ही समाज शालीन बन सकता है।[29]

जहां अपने हित की अनुभूति न हो, वहां व्यक्ति की कार्य-प्रेरणा कुंठित हो जाती है। देश व समाज के लिए भी वही आदमी अपने स्वार्थ का विसर्जन कर सकता है, जो देश व समाज के हित में ही अपना हित देखता है। अतः अपने हित के लिए नैतिक होना या देश व समाज के हित के लिए नैतिक होना—ये दो बातें नहीं

शेष पृष्ठ 58 पर

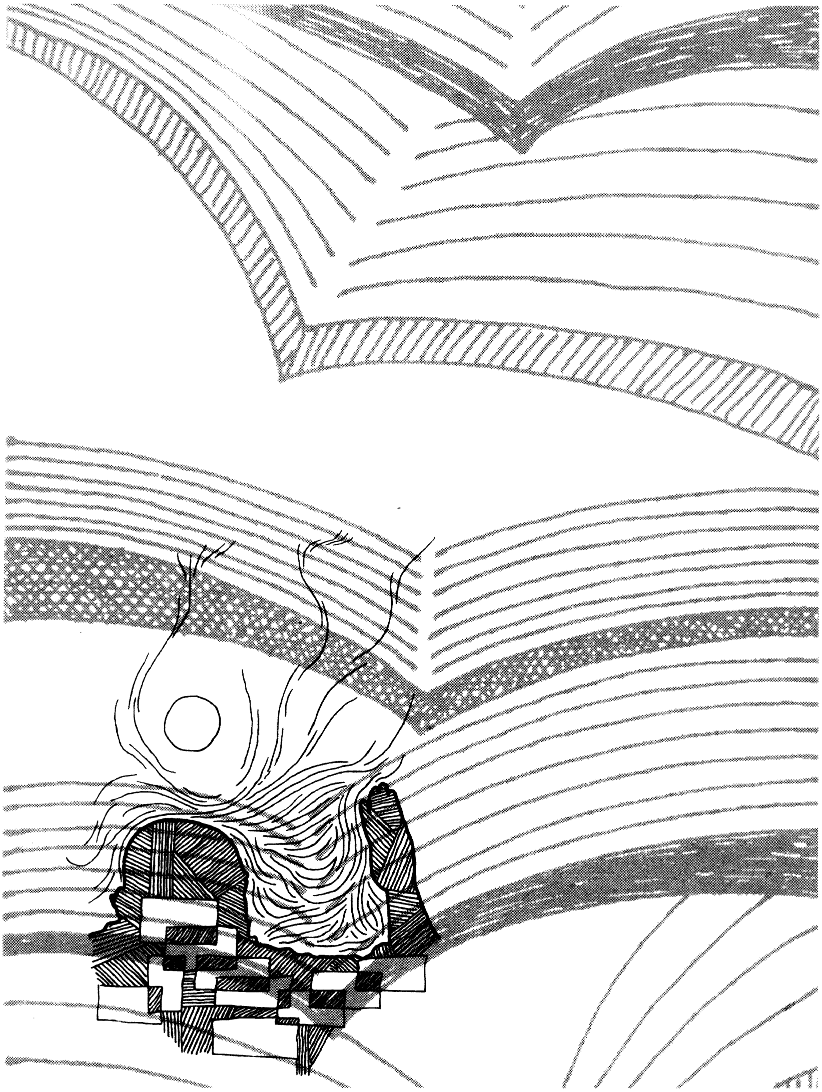

अनुभूति

यह जो दिया लिए तुम चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबंध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकंपित, उज्ज्वल एकरूप, निर्धूम।

—अज्ञेय

तेरापंथ : अनाग्रह है आधार

❁ आचार्यश्री महाप्रज्ञ

किसी भी संगठन के लिए तीन बातें जरूरी होती हैं—आचार, विचार और व्यवस्था। संघ के श्रेयस के लिए इन तीनों के विकास में बुद्धि का नियोजन करना चाहिए।

विचारः सम्यगाचारः व्यवस्थेति त्रयी मता।
गणस्य श्रेयसे तेन, मतिस्तत्र निविश्यताम्।।

सौभाग्य से आचार्यश्री भिक्षु ने इन तीनों बातों पर ध्यान केंद्रित किया।

कुछ लोग बहुत विचारक होते हैं, पर आचार को गौण कर देते हैं। कुछ लोग बहुत आचारनिष्ठ होते हैं, पर विचार को गौण कर देते हैं। कुछ लोग आचार और विचार—दोनों में रस लेते हैं, पर व्यवस्था को गौण कर देते हैं। हमारे सामने उदाहरण है महात्मा गांधी का। महात्मा गांधी बहुत अच्छे विचारक और बुद्धिमान व्यक्ति थे। वे आचारनिष्ठ भी थे। किंतु, उन्होंने व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने वर्तमान जीवन पर ध्यान दिया, पर उत्तरकालीन व्यवस्था पर नहीं। यदि वे इस पर ध्यान देते और इस दिशा में कुछ निर्णय लेते, तो लाखों आदमी न भी होते, पर कुछ ऐसे दीप और रश्मियां अवश्य होतीं, जिनका प्रकाश पाकर दूसरे भी आलोकित हो उठते।

अनिवार्य हैं व्यवस्था के नियम

भगवान महावीर ने व्यवस्था के नियमों को अनिवार्य बनाया। उन्होंने व्यवस्था के संदर्भ में कहा—जो ऐसा नहीं करेगा, उसके लिए यह प्रायश्चित्त होगा और जो इस नियम का अतिक्रमण करेगा, उसके लिए यह प्रायश्चित्त अनिवार्य है। महावीर ने व्यवस्था के नियमों के पालन को अनिवार्य बताया। छेदसूत्रों में व्यवस्था के नियम भरे पड़े हैं। इतिहासकार मानते हैं कि भगवान महावीर व्यवस्था करने में बहुत कुशल थे।

संगठन के लिए केवल वर्तमान काल पर ही नहीं, उत्तरकाल पर भी सोचना आवश्यक होता है। आचार्यश्री भिक्षु ने उत्तरकाल के बारे में भी सोचा और अन्य आचार्यों ने भी उत्तरकाल के बारे में सोचा। जो आचार्य अपने उत्तरकाल की व्यवस्था के बारे में ध्यान केंद्रित नहीं करते, वे शायद अपने दायित्व के प्रति भी न्याय नहीं करते और संघ के प्रति भी न्याय नहीं करते। यदि किसी कारण से ध्यान न दें, गहरी छानबीन न करें तो बहुत समस्याएं पैदा हो जाएं।

‘विचार की एकसूत्रता का सिद्धांत तेरापंथ में निरंतर चलता रहा है और आज के युग में इसका महत्त्व अधिक बढ़ गया है। आज का युग वैचारिक स्वतंत्रता का युग है। विचार की स्वतंत्रता, बुद्धि का विकास, चिंतन की क्षमता को रोकने या कुंठित करने की जरूरत नहीं है। खूब सोचा जाए, विचारा जाए और निष्कर्ष निकाले जाएं, किंतु उन निष्कर्षों को प्रसारित करने से पूर्व आचार्य के सामने उन्हें प्रस्तुत कर दिया जाए। आचार्य उस पर विचार करें, संघ के साधु-साध्वियां चर्चा करें। तत्त्वज्ञ श्रावक-श्राविकाओं का मत जाना जाए, उस संदर्भ में उठ रहे प्रश्नों का विश्लेषण किया जाए, यह सब-कुछ होने पर आचार्य उसे स्वीकार कर सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आचार्य को विचार उचित लगता है, वे उसे मान्य कर लेते हैं, पर साथ-साथ उसे प्रस्तुत करने का उचित अवसर नहीं मानते हैं तो वह विचार ‘थाप्य’ ही रहता है।’

248वां तेरापंथ स्थापना दिवस
आषाढ़ पूर्णिमा : 30 जुलाई
□
हर्ष : हर्ष

प्रश्न है विचार की एकता का

आचार्य भिक्षु ने इस बात पर गहराई से ध्यान दिया कि संघ में एक विचार रहे, एक मान्यता और सिद्धांत रहे। संघ और गण किसी एक व्यक्ति का नहीं होता और उस पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार भी नहीं होता। व्यवस्था के लिए आचार्य होते हैं, दूसरे अधिकारी भी हो सकते हैं, पर अधिकार किसी का नहीं होता। ठीक इसी तरह विचार के क्षेत्र में भी सबको छूट है, सोचने की पूरी स्वतंत्रता है। विचार पर कोई पाबंदी कैसे हो सकती है? ऐसा भी नहीं है कि संघ में एक ही व्यक्ति पढ़ा-लिखा होगा, बहुश्रुत होगा, शेष सारे भट्टारक ही भट्टारक होंगे। सब पढ़ने और लिखने वाले हैं, सोचने और विचारने वाले हैं। इस स्थिति में एक विचार कैसे हो सकता है?

वैचारिक संघर्ष को मिटाने की संहिता

इस संदर्भ में आचार्यश्री भिक्षु ने जो विधान दिया, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पूरे वैचारिक जगत में ऐसा किसी ने लिखा है या नहीं, यह खोज का विषय है। विचारों का द्वंद्व हो जाए तो क्या किया जाए? कैसे समाधान किया जाए? अनेकांत का दर्शन हमारे पास है, पर उसका व्यावहारिक रूप क्या बने? संभवतः प्रथम बार आचार्यश्री भिक्षु ने वैचारिक संघर्ष को मिटाने की आचार-संहिता प्रस्तुत की। इस आचार-संहिता की मूल भाषा इस प्रकार है—गण की एकता के लिए यह आवश्यक है कि उसके साधु-साध्वियों में सिद्धांत या प्ररूपणा का कोई मतभेद न हो, इसलिए भिक्षु स्वामी ने कहा है—'कोई सरधा, आचार, कल्प या सूत्र का कोई विषय अपनी समझ में न आए अथवा कोई नया प्रश्न उठे, वह आचार्य व बहुश्रुत से चरचा जाए, किंतु दूसरों से चरच कर उन्हें शंकाशील न बनाया जाए। आचार्य व बहुश्रुत साधु जो उत्तर दे, वह अपने मन में जंचे तो मान ले, न जंचे तो उसे 'केवलीगम्य' कर दे, किंतु गण में भेद न डाले। परस्पर दलबंदी न करे।'

सिद्धांत और प्ररूपणा का मतभेद न हो

पहली बात है—सिद्धांत और प्ररूपणा में मतभेद न हो। किसी मान्यता को जानना सिद्धांत है और उसे दूसरों को बतलाना प्ररूपणा है। जैसा जाना है, वैसी प्ररूपणा करे। यह नहीं हो सकता कि कोई साधु कुछ प्ररूपणा करे और कोई साधु कुछ प्ररूपणा करे। गण में ऐसा होना संभव ही नहीं है। यदि ऐसा होता है तो गण का कोई अर्थ ही नहीं हो सकता। यह संभव है—कोई विचार या सिद्धांत समझ

बोधि दिवस

आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी : 28 जुलाई

पावन स्मरण

सत्यशोधक : क्रांतदर्शी

□ आचार्यश्री महाप्रज्ञ □

आचार्यश्री तुलसी ने भिक्षु-चेतना-वर्ष पर एक गीत लिखा। उस गीत के दर्शन की गहराई तक जाना जरूरी है। उसके एक पद्य ने मुझे बहुत आकृष्ट किया है—

सत्य शोध के क्षेत्र में हो, मानस आग्रह-मुक्त।
सत्य साधना क्षेत्र में हो, मानस आग्रह-युक्त।।

आग्रह नहीं होना बहुत अच्छा है, तो कहीं-कहीं आग्रह होना भी बहुत अच्छा होता है। यह अनेकांत है। आचार्यश्री भिक्षु ने जो जीवन जीया, उसका दर्शन इस पद्य में निहित है। आचार्यश्री भिक्षु जैसा आग्रह-मुक्त व्यक्तित्व मिलना मुश्किल है। उन्होंने सत्य को खोजने का प्रयत्न किया और जैसा लगा, वैसा प्रतिपादन किया। स्वयं लिखा— 'मुझे ऐसा लगा, मैंने उसे स्वीकार किया। मगर आगे किसी बहुश्रुत साधु अथवा आचार्य को यह उचित न लगे, तो इसमें संशोधन/परिवर्तन कर दे'—अनाग्रह का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

आचार्यश्री भिक्षु के जीवन में किवाड़ और किवाड़िया (छोटा किवाड़, ताखी) का प्रश्न उपस्थित हुआ। आचार्यश्री भिक्षु ने कहा—'किवाड़ नहीं खोलना चाहिए।' चूलिए के किवाड़ होते थे और चूलिए को भीतर से देखा नहीं जा सकता। उसमें छोटे जीवों के वध की संभावना थी। इसलिए यह मर्यादा थी कि किवाड़ नहीं खोलना चाहिए। ताखी—जिसे मारवाड़ में ताखा और थली प्रांत में टोडीआलो कहते हैं—को बंद करने के लिए किवाड़िया का प्रयोग होता था। ताखे में भोजन रखा जाता था। साधु गोचरी जाते तब किवाड़िया खोल, ताखे में रखी भोजन-सामग्री उन्हें दी जाती। किवाड़िया छोटा होने के कारण उसका प्रतिलेखन और प्रमार्जन किया जा सकता था।

→

में न आए। इस स्थिति में उस विचारभेद की चर्चा कर सामान्य मुनियों को शंकाशील न बनाए। विचार-भेद की चर्चा बहुश्रुत और आचार्य के साथ करे। आचार्य या बहुश्रुत जो उत्तर दे, वह जंचे तो उसे स्वीकार कर ले। यह कितना वैज्ञानिक और दूरदर्शितापूर्ण अभिलेख है! यह नहीं कहा गया—तुम्हें जंचे या न जंचे, मानना ही होगा। यह कहा गया—यदि न जंचे तो उसे केवलीगम्य कर दे, किंतु गण में भेद न डाले।

विभाजन के कारण

संगठन की अक्षुण्णता का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है। हम देखते हैं—राजनीति के क्षेत्र में नित नए दल बनते हैं। एक दल के अनेक टुकड़े हो जाते हैं। संभवतः नए दल कम बनते हैं, बने हुए दलों के टुकड़े अधिक होते हैं। कारण क्या है? कोई आचार-संहिता नहीं, कोई विचार और सिद्धांत नहीं। जिस दल की पृष्ठभूमि में कोई निश्चित दर्शन नहीं होता, विचार और सिद्धांत नहीं होता, कोई निश्चित नीति नहीं होती, वैचारिक-द्वंद्व को सुलझाने के लिए उचित आचार-संहिता नहीं होती, उस दल में अनेक बार विभाजन होना संभव है या यह हो सकता है कि कोई किसी को कुछ न कहे, जिसके मन में जो जंचे, वह वैसा करता चला जाए।

धर्म-संप्रदाय : वर्तमान स्थिति

आज ऐसे धर्म-संप्रदाय भी हैं, जिनमें न कोई कहने वाला है और न कोई सुनने वाला है। जिसको जो जंचता है, वही वह कर लेता है। न जाने क्या-क्या किया जा रहा है! कोई सिद्धांत और दर्शन नहीं है। सिद्धांत क्या है? यह जानते ही नहीं हैं। ऐसे व्यक्तियों के समूह को संगठन कहना ही मुश्किल है। इसे हम स्वार्थों का समझौता कह सकते हैं। ऐसे संगठन को प्राणवान नहीं कहा जा सकता। वह हड्डियों का ढांचा मात्र हो सकता है। आचार्यश्री भिक्षु का यह वाक्य गण में भेद न डाले—वैचारिक आग्रह या विचार की एकता का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

वैचारिक आचार-संहिता : पहला निष्कर्ष

इस वैचारिक आचार-संहिता के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वे दर्शन और विचार के क्षेत्र में बहुत मूल्यवान हो सकते हैं। पहला निष्कर्ष है—सत्यद्रष्टा के अनुभवों का अनुसरण करो। जो सत्यद्रष्टा हैं, तीर्थंकर हैं, उनकी वाणी हमारी गति का आधार है। बिना आधार कोई चल नहीं सकता। केवल मौखिक बात भी नहीं चल पाती। मौखिक बात का मूल्य

इसलिए उसे खोला जा सकता है, यह स्थापना आचार्यश्री भिक्षु ने की। इस स्थापना के प्रतिपक्ष में बहुत सारे प्रश्न आए, भीतर से भी और बाहर से भी। उन प्रश्नों का समाधान करने के लिए आचार्यश्री भिक्षु ने किवाड़िये का चोढालिया लिखा। दृढ़ता के साथ अपनी स्थापना का समर्थन किया और अंत में लिख दिया—'मुझे किवाडिया खोलने में कोई दोष प्रतीत नहीं होता। शुद्ध व्यवहार समझकर मैंने किवाड़िया खोलने की स्थापना की है। यदि इसे खोलने में निश्चित दोष जान पड़े तो उसे छोड़ देना, इस नियम को बदल देना।'

मौने तो कवाड़िया रो दोष न भासे,
जाणे नें सुध व्यवहार।
जो निसंक दोष कवाड़िया में जाणो,
तो मत बहरजो लिगार रे।।

एक समर्थ आचार्य अपनी स्थापना को बदलने की बात कहे, क्या ऐसा हो सकता है? जिस व्यक्ति में सत्य के प्रति आग्रह न हो, जिसका मानस मिथ्या आग्रह से मुक्त न हो, जो सत्य के प्रति विनम्र न हो—वह ऐसी बात नहीं लिख सकता, नहीं कह सकता।

आचार्यश्री भिक्षु सत्य-शोध के क्षेत्र में आग्रह-मुक्त थे। दूसरी ओर जहां सत्य के आचरण का प्रश्न है, वहां उनका आग्रह अविचल था। उन जैसा सत्याग्रही व्यक्ति भी दुर्लभ है। आग्रह इतना कि प्राण भी चले जाएं, तो कोई चिंता नहीं। बहुत-बहुत परिस्थितियां सामने आईं, पर वे कभी विचलित नहीं हुए। जयाचार्यश्री ने उनके आग्रही व्यक्तित्व का शब्दांकन इस प्रकार किया है—'मरण धार सुध मग लह्यो।'.जो व्यक्ति मरने से डरता है, वह सत्य के अनुशीलन का आग्रह नहीं कर सकता। आचार्यश्री भिक्षु को भय दिखलाए गए—आहार-पानी नहीं मिलेगा, स्थान नहीं मिलेगा। विरोध के भयंकर बवंडरों का सामना करना पड़ेगा, पर उनकी आत्मा का एक अणु भी प्रकंपित नहीं हुआ। भय का केवल

→

तब होता है, जब तीर्थंकर प्रवचनकार होते हैं। वे कहते हैं—मैं ऐसा कहता हूं। और लोग उसी रूप में मान लेते हैं। जहां समान विचार और समान बुद्धि वाले लोग हैं, वहां यह संभव नहीं हो सकता। एक व्यक्ति कहता है—मैं ऐसा कहता हूं। दूसरा कह सकता है—क्या मैं कम बुद्धिमान हूं? क्या बुद्धि का ठेका तुमने ही ले लिया? बुद्धि पर किसी का ठेका नहीं है। इस स्थिति में वैचारिक एकता का कोई आधार नहीं बनता। आधार के बिना गति लड़खड़ा जाती है। इस स्थिति में एक अंतिम आधार चाहिए, जहां सब मौन हो जाएं। आचार्यश्री भिक्षु ने जिनवाणी को अपना आधार मान लिया। जिनवाणी के आधार का अर्थ है—सत्यद्रष्टा के अनुभवों का अनुसरण।

तटस्थ भाव हों निर्णय में : दूसरा निष्कर्ष

दूसरा निष्कर्ष है—जो निर्णय करना है, तटस्थ भाव से करो, पक्षपातपूर्ण नहीं। किसी से निश्रित होकर नहीं, राग-द्वेष से प्रभावित होकर नहीं। सर्वथा तटस्थ भाव से सोचो। वैचारिक अनाग्रह या वैचारिक एकता का यह दूसरा महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है।

आवश्यक है बुद्धि की प्रखरता : तीसरा निष्कर्ष

तीसरा निष्कर्ष है—जो बुद्धिगम्य हो, उसे बुद्धि से स्वीकार करो। बुद्धि का भी एक चौखटा है। हर बात बुद्धिगम्य नहीं हो सकती। बहुत सारे ऐसे तथ्य हैं, जो बुद्धिगम्य हो सकते हैं। कुछेक ऐसे सूक्ष्म तथ्य हैं, जो बुद्धिगम्य नहीं हो सकते। आचार्यश्री भिक्षु ने बुद्धि पर बहुत बल दिया, उसका प्रबल समर्थन किया। उनका यह मानना था कि बुद्धिमान को ही समझाया जाना चाहिए।

वस्तुतः बुद्धि के बिना कोई भी विचार या संगठन आगे नहीं बढ़ सकता। बुद्धि गति की शर्त है। जिस संगठन में बुद्धिमान लोग नहीं होते, समझने की शक्ति वाले लोग नहीं होते, वह कैसा संगठन होता होगा? इसीलिए आचार्यश्री भिक्षु ने बुद्धि पर ताला नहीं लगाया, बुद्धिवाद के मार्ग को बंद नहीं किया। प्रश्न हुआ—बुद्धिगम्य की बात को स्वीकार किया जा सकता है, लेकिन जो बुद्धिगम्य नहीं है, उसके लिए क्या करें? समस्या यह भी है कि सबकी बुद्धि समान नहीं होती। सामान्य बुद्धि वाले आदमी को तत्काल समझ नहीं आती। एक विशिष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति उसे समझाता है और वह समझ जाता है। कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जहां बुद्धि भी काम नहीं देती। वे बातें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि बुद्धि चकरा जाती है। जयाचार्यश्री ने कुछ ऐसे

प्रदर्शन ही नहीं हुआ, वह साकार बन सामने उपस्थित हुआ। आचार्यश्री भिक्षु के लिए स्थान का अभाव बाधा नहीं बना, रोटी और कपड़े का अभाव बाधा नहीं बना। गालियों की बौछार तो बिन बादल के बरसात जैसी होती थी। इन सबके बीच भी उन्होंने आनंद और प्रसन्नता का जीवन जीया। सत्य के शोध में आग्रह-मुक्त और सत्य की साधना में आग्रह-युक्त—ये दोनों वचन उनके जीवन में निदर्शन बन गए।

आचार्यश्री भिक्षु ने तेरापंथ धर्मसंघ को मर्यादा से मर्यादित और अनुशासन से अनुशासित किया। दूसरी ओर चिंतन की पूरी स्वतंत्रता दी, तर्क-वितर्क और विमर्श को सुरक्षित रखा। उन्होंने सबको अधिकार दिया—'जो सिद्धांत समझ में आ जाए, उसे स्वीकार करना, समझ में न आए तो तर्क-वितर्क और विमर्श के अवकाश का उपयोग करना।' मुझे याद आता है—सरदारशहर मर्यादा महोत्सव का समय। रात में प्रायः तीन बजे आचार्यवर (आचार्यश्री तुलसी) की सन्निधि में साधु-परिषद् जुड़ जाती, गहन चिंतन-मनन शुरू हो जाता। जिस संघ या संगठन में तर्क-वितर्क की स्वतंत्रता नहीं होती, वह सत्य के साथ नहीं जी सकता।

आचार्यश्री भिक्षु के सामने उनके प्रिय शिष्य वेणीरामजी आए और बोले 'महाराज! साधु हिंगलू से पात्र रंगते हैं, यह अच्छा नहीं। इससे राग पैदा होता है।'

आचार्य भिक्षु—'यह आवश्यक है।'

'यदि आवश्यक है तो पात्र को केल्हू से रंगा जाए।'

'तुम्हें पात्र रंगना है। एक केल्हू नजदीक पड़ा है, जिसका रंग अच्छा नहीं है। दूसरा केल्हू दूर पड़ा है, जिसका रंग अच्छा है। दोनों में से किसका उपयोग करोगे?'

'महाराज! जिसका रंग अच्छा है, उसका उपयोग करूंगा।'

'अच्छे रंग वाले का उपयोग करो तो हिंगलू का प्रयोग करने में क्या दोष है?'

बात गले उतर गई। समाधान हो गया।

→

सूक्ष्म प्रश्न उठाए और उन पर अपनी मीमांसा प्रस्तुत की। वे ऐसे प्रश्न हैं, जिन्हें हर किसी आदमी के सामने रखना भी उपयुक्त नहीं है। यदि कोई कच्ची बुद्धि वाला हो तो और अधिक उलझ जाए। प्रखर बुद्धिमान व्यक्ति उन प्रश्नों को देखकर चकरा जाए। हमारे धर्मसंघ के अनेक वरिष्ठ मुनि उन प्रश्नों में उलझ गए। उनके मन में भी प्रश्न उभर आए कि यह भेदरेखा कैसे खींची गई? यह कितनी विचित्र भेदरेखा है? आगमवेत्ता और बहुश्रुत जयाचार्यश्री ने जिस बात को कहा, उसे अनेक मुनि समझ नहीं पाए। इसी कारण अनेक मुनि संघ से भी अलग हो गए।

श्रद्धा से स्वीकारें : चौथा निष्कर्ष

यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है—बुद्धिगम्य न हो तो क्या किया जाए? आचार्यश्री भिक्षु ने इस प्रश्न के संदर्भ में बहुत सुंदर मार्गदर्शन किया है। उसे वैचारिक आचार-संहिता का चौथा निष्कर्ष कहा जा सकता है। वह निष्कर्ष है—जो बात बुद्धिगम्य नहीं है, उसे श्रद्धा से स्वीकार करना। व्यक्ति यह सोचे कि अमुक बात मेरी बुद्धि में नहीं बैठ रही है, पर मुझे आचार्य पर श्रद्धा है, अमुक बहुश्रुत पर विश्वास है, इसलिए मैं यह बात उनके विश्वास के आधार पर मानूंगा। आज मेरी समझ में यह बात नहीं आई इसलिए मैं इसे इस विश्वास के आधार पर स्वीकार करता हूं, भविष्य में मैं इसे समझने का प्रयत्न करूंगा। संभव है कि यह बात आगे समझ में आ जाए। आज समझ में नहीं आई, हो सकता है—दस वर्ष बाद समझ में आ जाए। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा, अनुभव बढ़ेगा, चिंतन और विचार की क्षमता बढ़ेगी, बात समझ में आ जाएगी। आचार्य से मुनि कहेगा—'महाराज! आपकी बात मेरे गले नहीं उतरी है, बुद्धि से समझ में नहीं आई है, पर मैं उसे आपके प्रति श्रद्धा होने के कारण मान रहा हूं।' वैचारिक अनाग्रह का यह सूत्र कितना महत्त्वपूर्ण है?

न समझ पाएं तो केवलीगम्य करें : पांचवां निष्कर्ष

एक प्रश्न और उभरा—मान लीजिए, किसी में बुद्धि भी पूरी नहीं है और श्रद्धा भी नहीं है। इस स्थिति में क्या किया जाए? इस संदर्भ में वैचारिक आचार-संहिता का पांचवां निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है—जो बात समझ में न आए, उसे केवलीगम्य कर दें। मुनि जिस बात को बुद्धि से स्वीकार न कर पाए, श्रद्धा से स्वीकार न कर पाए, उसे केवलीगम्य कर दे। यह वैचारिक आग्रह से बचने का अंतिम सूत्र है। मुनि यह सोचे—मैं छद्मस्थ हूं। मेरा ज्ञान अल्प है, व्यवहार में मुझे यह बात सच नहीं लग रही है, हो सकता है—यह

इस प्रकार वैचारिक स्वतंत्रता से अनेक समाधान हुए हैं। अनुशासन और तर्क—दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में ये विरोधी नहीं हैं। नित्य और अनित्य को परस्पर विरोधी मानकर धर्मकीर्ति, आद्य शंकराचार्य, डॉ. राधाकृष्णन्, डॉ. हिरियन्ना आदि ने अनेकांत पर विमत प्रस्तुत किया। वास्तव में नित्य और अनित्य परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। ये पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। आचार्यश्री भिक्षु ने संघ-व्यवस्था में अनेकांत की शैली का उपयोग किया। अनुशासन और तार्किक स्वतंत्रता—दोनों की प्रतिष्ठा की। उनके जीवन का एक पहलू है—सत्याग्रह, तो दूसरा है—सत्यग्राही दृष्टिकोण।

आचार्य विनोबा ने समणसुत्तं की भूमिका में लिखा—'मैं कबूल करता हूं कि मुझ पर गीता का गहरा असर है। उस गीता को छोड़कर महावीर से बढ़कर किसी का असर मेरे चित्त पर नहीं है। उसका कारण यह है कि महावीर ने जो आज्ञा दी है, वह बाबा को पूर्ण मान्य है। आज्ञा यह कि सत्यग्राही बनो। आज जहां-जहां जो उठा सो सत्याग्रही होता है। बाबा को भी व्यक्तिगत सत्याग्रही के नाते गांधीजी ने पेश किया था, लेकिन बाबा जानता था—वह कौन है, वह सत्याग्रही नहीं, सत्यग्राही है। हर मानव के पास सत्य का अंश होता है, इसलिए मानव-जन्म सार्थक होता है। तो धर्म में, पंथों में, सब मानवों में सत्य का जो अंश है, उसको ग्रहण करना चाहिए। यह जो शिक्षा है—महावीर की, बाबा पर गीता के बाद उसी का असर है। गीता के बाद कहा, लेकिन जब देखता हूं, तो मुझे दोनों में फर्क ही नहीं दिखता है।'

आचार्यश्री भिक्षु के अंतस्तल को समझने की जरूरत है। उनका सत्यग्राही और सत्याग्रही दृष्टिकोण हृदयंगम हो। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को अनेकांत के आलोक में निरखने/परखने का अवसर मिले। तर्क-वितर्क और विचार-विमर्श के दरवाजे खुलें, विचार-क्रांति की पृष्ठभूमि तब सहज स्पष्ट हो जाएगी। •

वास्तव में सच हो। 'सच क्या है' इसे सर्वज्ञ ही जान सकते हैं। मैं अपनी बात का आग्रह क्यों करूं? खींचतान क्यों करूं? मैं इसे सर्वज्ञ के लिए छोड़ रहा हूं। वैचारिक अनाग्रह का यह अंतिम सूत्र है।

विचार और आचार की एकता का आधार

आचार्य भिक्षु ने संगठन को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए, विचार और प्ररूपणा की एकता के लिए वैचारिक क्षेत्र में जो आचार-संहिता दी, वह आज भी शायद अलौकिक और अद्वितीय है। यह गर्व के साथ कहा जा सकता है—एक आचार, एक विचार और एक आचार्य—यह तेरापंथ की विशेषता है। प्रश्न होता है—एक विचार और आचार का आधार क्या है?

मुनि भीमराजजी बहुत ज्ञानी संत थे। वे सूत्रों के ही अध्येता नहीं थे, विज्ञान की खोजों का भी अध्ययन करते थे। विज्ञान और आगम—दोनों में समान रुचि रखने वाले संत थे। उन्होंने एक नई बात खोज ली। उनका मानना था—आयुष्य टूट सकता है, अकाल मृत्यु हो सकती है। संघीय प्ररूपणा यह थी कि आयुष्य नहीं टूटता, अकाल मृत्यु नहीं होती। उनसे कोई पूछता—'महाराज! क्या आयुष्य टूट सकता है?' वे इस प्रश्न पर मौन हो जाते, अपना मत किसी को नहीं बताते। वे यही कहते—'इस बारे में मैं अभी कुछ नहीं कहना चाहता।' आचार्य कालूगणी के समय यह प्रश्न उभरा। आचार्यवर के पदासीन होने के बाद अनेक वर्ष तक यह बोल प्रखरता से चर्चित हुआ। चर्चा के पश्चात् आचार्यश्री ने इस तथ्य को स्वीकृत करते हुए घोषणा की कि यह बात ठीक है कि आयु टूट सकती है, अकाल मृत्यु हो सकती है। इस घोषणा के बाद मुनि भीमराजजी का मौन खुला। उन्होंने इस संदर्भ में सारे तथ्य स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए। एक व्यक्ति का विचार पूरे संघ का विचार बन गया।

अवकाश चिंतन का

संघ में अनेक ऐसे समझदार मुनि हो सकते हैं, जो नई-नई बातों की खोज सकते हैं। जब तक वह संघ द्वारा मान्य नहीं होती, तब तक उसे व्यापक क्षेत्र में प्रसारित करने का अधिकार नहीं मिलता। इसीलिए विचार की एकसूत्रता का सिद्धांत तेरापंथ में निरंतर चलता रहा है और आज के युग में इसका महत्त्व अधिक बढ़ गया है। आज का युग वैचारिक स्वतंत्रता का युग है। विचार की स्वतंत्रता, बुद्धि का विकास, चिंतन की क्षमता को रोकने या कुंठित करने की जरूरत नहीं है। खूब सोचा जाए, विचारा जाए और निष्कर्ष निकाले जाएं, किंतु उन निष्कर्षों को प्रसारित करने से पूर्व आचार्य के सामने उन्हें प्रस्तुत कर दिया जाए। आचार्य उस पर विचार करें, संघ के साधु-साध्वियां चर्चा करें। तत्त्वज्ञ श्रावक-श्राविकाओं का मत जाना जाए, उस संदर्भ में उठ रहे प्रश्नों का विश्लेषण किया जाए, यह सब-कुछ होने पर आचार्य उसे स्वीकार कर सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आचार्य को विचार उचित लगता है, वे उसे मान्य कर लेते हैं, पर साथ-साथ उसे प्रस्तुत करने का उचित अवसर नहीं मानते हैं तो वह विचार 'थाप्य' ही रहता है।

विचार : संघीय बनाने की प्रक्रिया

तेरापंथ में किसी विचार या चिंतन को संघीय रूप देने की एक प्रक्रिया है। जब चर्चा के लिए कोई नया बोल या विचार प्रस्तुत होता है तब आचार्य उस पर चर्चा के लिए दस-बीस प्रबुद्ध साधु-साध्वियों की नियुक्ति कर देते हैं। प्रायः मर्यादा महोत्सव के अवसर पर प्रबुद्ध साधु-साध्वियों की संगीति में नए उभरे हुए प्रश्न चर्चित होते हैं। प्रबुद्ध साधु-साध्वियां उन प्रश्नों पर चिंतन-मंथन करते हैं और उनका जो एक निष्कर्ष आता है, उसे आचार्य के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। जिन निष्कर्षों को स्वीकृति मिल जाती है, उनकी घोषणा कर दी जाती है। अनेक निष्कर्ष ऐसे भी होते हैं, जिन्हें कुछ और चिंतन के लिए छोड़ दिया जाता है। उन्हें व्यवहार में नहीं लाया जाता, सामूहिक मान्यता नहीं दी जाती। इस सारी प्रक्रिया से निकल कर जो विचार सबके सामने निर्णीत रूप में घोषित होता है, वह संघ के प्रत्येक व्यक्ति का विचार बन जाता है।

वैचारिक आचार-संहिता का हृदय

विचार का क्षेत्र बहुत उलझा हुआ है। संभवतः आचार से भी ज्यादा जटिल है—विचार का क्षेत्र। मनुष्य के दिमाग में न जाने कितने तूफान उठते हैं। चिंतन का भी बहुत अहं होता है। व्यक्ति सोचता है कि मेरा इतना अच्छा विचार था, फिर भी उसे नहीं माना गया। यह दावा भी किया जाता है कि यदि मेरा विचार माना जाता तो समस्या सुलझ जाती। कुछ लोग दूर बैठे-बैठे ही अपने विचारों को संप्रेषित करते रहते हैं। अपना विचार प्रस्तुत करें, पर उसे मानने का आग्रह न करें। दूसरे के विचार को सुनें, किंतु उसे सर्वथा अस्वीकार न करें। यदि ऐसा होता है तो वैचारिक अनाग्रह की दिशा उद्घाटित हो जाती है। विचार के क्षेत्र में आचार्यश्री भिक्षु ने जो आचार-संहिता दी, उसका हृदय यही है। ❖

एक ज्योतिपुरुष; एक शिल्पकार

साध्वी कनकश्री

मुझे इंतजार है इक्कीसवीं सदी के आने का, नए मानव के जन्मने का, निर्माण के नए क्षितिज छूने का और जीवन-मूल्यों को जीने का

ये श्रेष्ठतम विचार हैं महान स्वप्नदर्शी, सृजनशिल्पी राष्ट्रसंत आचार्यश्री तुलसी के, जिन्होंने अपनी लंबी उम्र का एक-एक लम्हा जीवन-मूल्यों के साथ जीया। जिन्होंने आध्यात्मिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु जीवनभर कठिन तपस्याएं की। नए मानव, नए समाज और नए विश्व के निर्माण हेतु जिन्होंने संघ और समाज को नए उन्मेष, नए आयाम दिए और अपने समर्थ शिष्य, यशस्वी उत्तराधिकारी, शांति और अहिंसा के मूर्तिमान प्रतीक आचार्यश्री महाप्रज्ञ को इक्कीसवीं सदी को संवारने-निखारने का समग्र दायित्व सौंप, स्वयं आत्मलीन हो गए। सीमा से निस्सीम बन गए। देश की कोटि-कोटि जनता के लिए ज्योतिपथ का निर्माण कर गए।

'आचार्यश्री तुलसी ने कभी भी जाति, भाषा, लिंग, रंग आदि को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव व ऊंच-नीच जैसी संकीर्ण विचारधारा को स्थान नहीं दिया। उन्होंने अपने मौलिक चिंतन, अमृत प्रवाही प्रवचनों व उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाओं द्वारा वर्गविहीन समाज व विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत नए मानव के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई। अणुव्रत के माध्यम से उन्होंने धर्मनिरपेक्षता की ही नहीं, अपितु सर्वधर्म सद्भाव तथा मानव-धर्म की अनूठी मिसाल खड़ी की, जिसने सभी वर्गों, समुदायों के लोगों में सामाजिक स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णुता और चारित्रिक पवित्रता की भावना उत्पन्न की। उन्होंने संपूर्ण मानवता के कल्याण हेतु अपने जीवन का एक-एक बहुमूल्य क्षण समर्पित कर दिया।'

महाप्रयाण दिवस
आषाढ़ कृष्णा तृतीया : 3 जुलाई
श्रद्धाभिव्यक्ति

व्यक्तित्व और कर्तृत्व

20 अक्टूबर, 1914, राजस्थान का जोधपुर संभाग, नागौर जिले का समृद्ध लाडनूं कस्बा, वहां ओसवाल जाति के मध्यमवर्गीय खटेड़ वंश में जन्मे आचार्यश्री तुलसी आज भी भारतीय ऋषि-परंपरा के महान नक्षत्र हैं। आर्थिक दृष्टि से सामान्य, किंतु संस्कार-संपदा से समृद्ध परिवार में जन्मे बालक तुलसी बचपन से ही मेधावी, कुशाग्र बुद्धि, महत्त्वाकांक्षी एवं अनुशासनप्रिय थे। उस समय के तेजस्वी, यशस्वी और मनस्वी जैनाचार्यश्री कालूगणी के वरदहस्त से उदीयमान किशोर तुलसी ने ग्यारह वर्ष की वय में जैन-मुनि दीक्षा स्वीकार की। लक्ष्य-निष्ठा, आत्मनिष्ठा, अप्रमत्तयोग, दृढ़ अध्यवसाय और गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण भाव का रासायनिक योग पाकर मुनि तुलसी की आंतरिक क्षमताएं तीव्रता के साथ प्रकट होने लगीं। मुनि-चर्या और संयम-साधना में पूर्ण सजग रहते हुए उन्होंने साधना की उच्च भूमिका को प्राप्त कर लिया। सोलह वर्ष की वय में वे कुशल अध्यापक बन गए। उनकी शाला किशोर-मुनियों के संपूर्ण व्यक्तित्व-निर्माण की प्रयोगशाला बन गई। बाईस वर्ष की उम्र में गुरुदेवश्री कालूगणी ने मुनि तुलसी को जैन तेरापंथ धर्मसंघ का आचार्य बना दिया। आचार्यश्री तुलसी का आध्यात्मिक

नेतृत्व न केवल तेरापंथ के लिए, अपितु समग्र जैन समाज एवं धार्मिक समाज के लिए वरदायी सिद्ध हुआ। अपने ग्यारह-वर्षीय मुनि-जीवन में स्वयं 25 हजार पद्य परिमित शास्त्रीय ज्ञान कंठस्थ कर यह संदेश दे दिया कि बौद्धिक ज्ञान व अध्ययन-अध्यापन के प्रति उनके मन-मस्तिष्क में सर्वोच्च स्थान है। जैन आगमों के गंभीर ज्ञान के साथ सभी भारतीय दर्शनों का गंभीर अध्ययन भी उन्होंने किया। एक विशाल धार्मिक संगठन का गुरुतर दायित्व संभालते हुए भी उन्होंने अध्ययन-अध्यापन के क्रम को विशेष गति दी। शिष्य-शिष्याओं को विविध विद्या-शाखाओं में पारगामी बना दिया। संघ में शिक्षा, शोध और साहित्य की धाराएं बहा दी।

आचार्यश्री तुलसी की मातृभाषा राजस्थानी थी। प्रारंभ में वे संस्कृत और राजस्थानी भाषा में ही बोलते-लिखते थे। उसके बाद राष्ट्रभाषा हिंदी को भी उन्होंने पूरा सम्मान दिया। हिंदी भाषा में शताधिक ग्रंथों की रचना की। राष्ट्रभाषा को समृद्ध बनाया। भारतीय साहित्य-संपदा का संवर्धन किया।

उनका अध्ययन गहरा था, अनुभव व्यापक थे, साधना सिद्ध-समृद्ध थी। उनके प्रवचन सरल हिंदी भाषा में होते थे। अपने विचारों को सुबोध बनाने के लिए वे नाना उदाहरणों, दृष्टांतों और बोध-कथाओं का उपयोग भी खुलकर करते थे। संगीत की गूंज उनके प्रवचन की प्रभावोत्पादकता को शतगुणित कर देती थी, कार्यक्रम में रस घोल देती थी। उनकी रचनाओं व प्रवचन शैली में स्पष्टता और निस्पृहता सहज परिलक्षित होती थी। उनकी वाणी में कबीर की वाणी जैसा फक्कड़पन भी अनेक स्थलों पर उद्भाषित होता है। उनकी सरलता, सादगी और संयम अपूर्व थे, अनुकरणीय थे।

सृजनात्मक शक्ति के अथाह स्रोत

वे चिर तरुण, चिर युवा थे। जीवन के नौवें दशक में प्रवेश करने के बावजूद भी उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व में पवन जैसा वेग था। चिंतन, निर्णय और क्रियान्वयन में अद्भुत सामंजस्य था। वे सृजनात्मक क्षमताओं के अथाह स्रोत थे। ऊर्जापुंज थे। वे युवाओं को आह्वान करते हुए कहते थे—'युवाओं में आत्मबल, संकल्प बल और पर्याप्त कार्यक्षमता होनी चाहिए। उनमें हनुमान जैसी जितेंद्रियता, ज्ञान और बौद्धिक क्षमता चाहिए। मन और पवन जैसा वेग चाहिए, स्फूर्ति चाहिए। सामने कार्य दिखते ही उत्साह के साथ छलांग लगाने का जीवट चाहिए।' वे कहते थे कि उम्र चाहे आए, वृद्धावस्था आए, पर मन बूढ़ा न हो। युवकों को अपनी शक्ति, स्फूर्ति और प्रतिभा की सुरक्षा के लिए जागरूक रहना चाहिए। वे मानते थे कि संयम-प्रधान जीवन-शैली द्वारा उपभोक्ता मनोवृत्ति का नियमन करने से ऐसा संभव हो सकता है।

एक उदारचेता धर्माचार्य

जिन भारतीय मनस्वी संतों व धर्मगुरुओं ने मानवीय एकता, सर्वधर्म सद्भाव, सांप्रदायिक सहिष्णुता और राष्ट्रीय चरित्र की व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को प्रेरणा दी, उनमें आचार्य तुलसी का अग्रणी नाम है। वे जैन धर्म के आचार्य होते हुए भी सब धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। वे कहते थे—तुम चाहे जिस धर्म को मानो, चाहे जिस आस्था से अनुबंधित रह उपासना करो। पर, उदार भावना सब धर्मों के प्रति रखो। वे सांप्रदायिक कट्टरवाद के घोर विरोधी थे। उनका स्पष्ट अभिमत था कि सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वालों का भविष्य सदा अंधकारपूर्ण रहता है। संप्रदाय सत्यप्राप्ति का माध्यम हो सकता है, स्वयं सत्य नहीं। अतः उसे माध्यम ही बनाए रखें, सत्य का स्थान न दें। आचार्यश्री तुलसी ने कभी भी जाति, भाषा, लिंग, रंग आदि को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव व ऊंच-नीच जैसी संकीर्ण विचारधारा को स्थान नहीं दिया। उन्होंने अपने मौलिक चिंतन, अमृत प्रवाही प्रवचनों व उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाओं द्वारा वर्गविहीन समाज व विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत नए मानव के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई। अणुव्रत के माध्यम से उन्होंने धर्मनिरपेक्षता की ही नहीं, अपितु सर्वधर्म सद्भाव तथा मानव-धर्म की अनूठी मिसाल खड़ी की, जिसने सभी वर्गों, समुदायों के लोगों में सामाजिक स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णुता और चारित्रिक पवित्रता की भावना उत्पन्न की। उन्होंने संपूर्ण मानवता के कल्याण हेतु अपने जीवन का एक-एक बहुमूल्य क्षण समर्पित कर दिया। अणुव्रत मिशन के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र का नैतिक-आध्यात्मिक मार्गदर्शन किया। राष्ट्रीय चरित्र का सर्वग्राही प्रारूप प्रस्तुत किया। देशव्यापी पदयात्राओं द्वारा देश के कोने-कोने में नैतिक जागरण का मंत्र फूंका। उन्होंने कहा—'जिस देश के नागरिक चरित्र-संपन्न, अनुशासित, श्रमशील, कर्तव्यपरायण, स्वार्थ-त्यागी, सेवाभावी और

शेष पृष्ठ 32 पर

प्रज्ञा जागरण : जीवन का उत्कर्ष

❁ मुनि मदनकुमार

'अहिंसा को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं— 'अहिंसा सिर्फ 'मत मारो' में और धर्म-स्थानों में बंधी हुई नहीं है। धर्म तो चौबीस घंटे व्यक्ति के साथ रहता है। इसलिए अहिंसा के विकास की कसौटी यही है कि व्यक्ति धर्म-स्थान में जिस तरह रहे, उसी तरह घर और बाजार में भी रहे।' धर्म अमृत है, बशर्ते कि वह आचरण को परिष्कृत करे। आचरणमूलक धर्म की ओर इंगित करते हुए वे दृष्टिबोध देते हैं—'यदि वास्तव में धर्म को समझना है, धर्म के रहस्यों को जानना है तो सबसे पहले अपनी वृत्तियों को देखना शुरू करें। व्यक्ति में कभी अहंकार की वृत्ति जागती है, तो कभी हीन भावना की। कभी ईर्ष्या की वृत्ति जागती है, तो कभी घृणा की। ये वृत्तियां आग्रह को जन्म देती हैं। वही व्यक्ति धर्म का मर्म जान सकता है जिसने अपनी वृत्तियों का परिष्कार करना सीखा हो।''

पावन जन्मोत्सव
आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी : 12 जुलाई
□
हर्षाभिवंदन

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी मूल्यपरक शिक्षा के प्रणेता हैं। शिक्षा के साथ अध्यात्म का विकास होना चाहिए, यह उनका स्पष्ट अभिमत है। वे मानते हैं कि अध्यात्मशून्य शिक्षा मस्तिष्क को प्रबुद्ध बना सकती है, किंतु वृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए तो अध्यात्म की आवश्यकता ही रहेगी। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की अनुभूति है कि कथनी और करनी की असमानता का मुख्य कारण संवेग और संस्कारहीनता है। यदि शिक्षा द्वारा भावनात्मक विकास नहीं हुआ, तो शिक्षा का समूचा का समूचा अनुष्ठान ही व्यर्थ हो जाएगा। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का उद्घोष है—वह शिक्षा अपूर्ण है जो जीवन-व्यवहार में मूल्यों का अवतरण न कर सके। इसी अपूर्णता को पूर्ण करने का एक उपक्रम है—जीवन विज्ञान। भावनात्मक विकास आज बौद्धिक विकास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। चेतना के रूपांतरण एवं भावनात्मक विकास की प्रायोगिक पद्धति जीवन विज्ञान है। यह किसी धर्म या संप्रदाय से संबंधित नहीं है। यह विद्या की मात्र एक शाखा है। इसका विकास शिक्षा-शाखा के रूप में होना चाहिए। शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर चिंतन प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—शिक्षा और चरित्र-निर्माण को विभाजित करके नहीं देखा जा सकता। यदि शिक्षा की निष्पत्ति चरित्र-निर्माण या व्यक्तित्व-निर्माण नहीं है, तो यह सही नहीं है। उसमें कोई-न-कोई त्रुटि है। उस त्रुटि को पूरा करना शिक्षा से जुड़े हुए लोगों का काम है। विद्यार्थी में बौद्धिक विकास के साथ-साथ अनुशासन, सहिष्णुता, ईमानदारी, दायित्व-बोध, व्यापक दृष्टिकोण और व्यापक चिंतन का विकास होना चाहिए। केवल सिद्धांत बोध के द्वारा विद्यार्थी अपनी अस्मिता को पहचान सके और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पित हो सके, यह बहुत कम संभव है। इसके लिए सिद्धांत और प्रयोग, दोनों का समन्वय आवश्यक है। मूल्यहीन शिक्षा की समस्या का समाधान आचार्यश्री जीवन विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनका चिंतन है कि जीवन विज्ञान समाज-परिवर्तन एवं व्यक्ति-परिवर्तन का अमोघ प्रयोग है। शिक्षा के साथ गुणवत्ता आए, नैतिक एवं चारित्रिक निष्ठा जागे—जीवन विज्ञान से यह संभव है। जीवन विज्ञान को शिक्षा के साथ जोड़कर चरित्रनिष्ठ पीढ़ी का निर्माण किया जा सकता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आचार शुद्धि के हिमायती हैं। वे सर्वांग सुंदर व्यक्तित्व-निर्माण के प्रबल प्रेरणास्रोत हैं। उनकी प्रखर सोच है कि व्यक्तित्व की प्रतिमा दो धातुओं से बनती हैं। वे धातुएं हैं—आचार और विचार। ये ही जीवन के दो पंख हैं। इन्हीं के सहारे व्यक्ति उड़ान भरता है और बहुत ऊंचाई तक पहुंच जाता है। आचार की ऊंचाई में विचारों की गहराई होती है और विचारों की ऊंचाई में आचार की गहराई होती है। दोनों एक-दूसरे को थामे हुए हैं।

आचार्य भिक्षु के शब्दों में भगवान महावीर की आज्ञा का सार है—आचार। आचार शुद्ध होता है तो विचार स्वयं शुद्ध हो जाते हैं। विचारों में आग्रह या अपवित्रता तभी आती है, जब आचार शुद्ध नहीं होता। आचारहीनता के समाधानस्वरूप आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'विचार और आचार की दूरी तब तक नहीं मिटेगी, जब तक उनके बीच संस्कार के सेतु का निर्माण नहीं होगा। पहले संस्कार का निर्माण होगा, फिर आचार का निर्माण होगा। आचार को पवित्र बनाने के लिए जरूरी है कि विचार को संस्कार में बदला जाए।'

जीवन निर्माण का महामंत्र है—श्रद्धा। आचार्यश्री घनीभूत श्रद्धा के विकास पर बहुत बल देते हैं। उनका मानना है कि ज्ञान को आचरण तक श्रद्धा ले जाती है। ज्ञान दुर्लभ है, श्रद्धा उससे भी दुर्लभ है, आचरण उससे भी दुर्लभ है। ज्ञान के परिपक्व होने पर श्रद्धा सुलभ होती है और श्रद्धा के सुलभ होने पर आचरण सुलभ होता है। ज्ञान और आचार को जोड़ने वाला सेतु श्रद्धा है। वह ज्ञात सत्य के प्रति आकर्षण पैदा करता है। आकर्षण पुष्ट हो जाता है, तब ज्ञान स्वयं आचार बन जाता है।

दुख-मुक्ति मानव मात्र का लक्ष्य है। मनुष्य ने इस दिशा में सदा प्रयास किया है। प्रयास के सफलीकरण के लिए आचार्यप्रवर दिशा-बोध देते हुए कहते हैं—'अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन और अकेला पुरुषार्थ मनुष्य को दुख-मुक्ति की ओर नहीं ले जाता। ज्ञान, दर्शन और आचरण का समन्वय ही मनुष्य को दुख-मुक्ति की ओर ले जा सकता है। भगवद्-वाणी है—**पढमं नाणं तओ दया**—पहले जानो, फिर करो। ज्ञानहीन कर्म और कर्महीन ज्ञान—ये दोनों व्यर्थ हो जाते हैं। ज्ञात-सत्य का आचरण और आचरित सत्य का ज्ञान—ये दोनों एक साथ होकर ही सार्थक होते हैं।' आज सबसे बड़ा संकट चरित्र का है। चरित्र के अकाल से मानव समाज बेहद दुखी है। इस दुख निवारण का उपाय चरित्र-निर्माण में ही सन्निहित है। इस घोर समस्या के समाधान के प्रसंग में उनका कहना है—'वर्तमान युग में सबसे ज्यादा चरित्र का ह्रास हो रहा है। भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। यह अनेक लोगों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। मैं इस चिंता को ज्यादा सार्थक नहीं मानता। हमारे लिए चिंता का विषय होना चाहिए—आज व्यक्ति का दृष्टिकोण मिथ्या बन गया है। हम चरित्र को देखने से पूर्व यह देखें कि व्यक्ति का दृष्टिकोण कैसा है? दृष्टिकोण सही है तो चरित्र का स्खलन हो जाने पर भी व्यक्ति पुनः संभल जाएगा। यदि दृष्टिकोण गलत है तो समझना चाहिए वहां स्खलन ही स्खलन है।'

जीवन में मानसिक शांति के लिए संवेगों का नियमन जरूरी है। इसके बिना जीवन में सुख और शांति दिवा-स्वप्न की तरह बने रहेंगे। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जीवन में उपशम और संयम के विकास पर बहुत बल देते हैं। वे मानते हैं कि इसी से जीवन में अहिंसा का विकास संभव है। शांति और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, उन्हें कभी विभक्त नहीं किया जा सकता। इस शाश्वत सचाई के अनुभव और तदनुरूप आचरण से जीवन में गुलाब के फूल उगाए जा सकते हैं। आचार्यश्री का एक मौलिक मंतव्य है—'अहिंसा के विकास के लिए मन और भावों की पवित्रता नितांत आवश्यक है। मानसिक अहिंसा का विकास नहीं हुआ तो कायिक हिंसा से परहेज भी बहुत ज्यादा सार्थक नहीं होगा।' सुख की चाह को राह दिखाते हुए वे कहते हैं—'प्रत्येक व्यक्ति सुख का आकांक्षी है। वह शांति चाहता है। सुख और शांति उसे प्राप्त होते हैं, जिसका मस्तिष्क शांत है तथा जिसका अपने संवेगों पर नियंत्रण है। अपने संवेगों पर जिसका नियंत्रण नहीं है, वह अशांति में ही रहेगा।' अहिंसा को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'अहिंसा सिर्फ 'मत मारो' में और धर्म-स्थानों में बंधी हुई नहीं है। धर्म तो चौबीस घंटे व्यक्ति के साथ रहता है। इसलिए अहिंसा के विकास की कसौटी यही है कि व्यक्ति धर्म-स्थान में जिस तरह रहे, उसी तरह घर और बाजार में भी रहे।' धर्म अमृत है, बशर्ते कि वह आचरण को परिष्कृत करे। आचरणमूलक धर्म की ओर इंगित करते हुए वे दृष्टिबोध देते हैं—'यदि

वास्तव में धर्म को समझना है, धर्म के रहस्यों को जानना है तो सबसे पहले अपनी वृत्तियों को देखना शुरू करें। व्यक्ति में कभी अहंकार की वृत्ति जागती है, तो कभी हीन भावना की। कभी ईर्ष्या की वृत्ति जागती है, तो कभी घृणा की। ये वृत्तियां आग्रह को जन्म देती हैं। वही व्यक्ति धर्म का मर्म जान सकता है जिसने अपनी वृत्तियों का परिष्कार करना सीखा हो।'

धर्म सुख का स्रोत है। धर्म यदि जीवन में आया है तो सुख भी आएगा ही। सबसे बड़ी बात है—दृष्टि की निर्मलता। दृष्टि नैर्मल्य की शिक्षा देते हुए आचार्यश्री उद्बोधित करते हैं—'परिस्थिति के साथ समझौता करने वाले को कोई दुखी नहीं बना सकता, उसकी प्रसन्नता को कोई बांट नहीं सकता। जो व्यक्ति अभावों के बीच रहता हुआ भी भाव को देखता है, वह सदा प्रसन्न रहता है। आचार्य भिक्षु अभावों के बीच सदा प्रसन्न रहे, वे अभाव में भी भाव को ढूंढ़ते रहे। यदि व्यक्ति अभाव की दिशा में जाएगा तो उसे अप्रसन्नता मिलेगी। सुख एवं दुख का स्रोत व्यक्ति की दृष्टि में निहित है।' यह सच है कि **अज्ञस्य दुखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्**—जो अज्ञानी आदमी है, अभाव को देखने वाला है, उसके लिए यह जगत दुखमय है। और जो ज्ञानी है, जिसने अपने-आपको जाना है, जो भाव को देखने वाला है, उसके लिए सारा जगत आनंदमय है। भाव को देखने वाला आनंद में डूबा रहता है। उसे अभाव में भी दुख का बोध नहीं होता।

समता जीवन का सार है, मनःस्थिति का निर्माण है। परिस्थिति को नहीं, मनःस्थिति को बदला जा सकता है। समता की साधना को पुष्ट बनाकर तटस्थता का अभ्यास किया जाना चाहिए। यही सुख की खान है। माध्यस्थ वृत्ति के विकास पर बल देते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'जब व्यक्ति तटस्थ नहीं होता तब वह प्रत्येक परिस्थिति के साथ अपने-आप को जोड़ देता है। वह मन को परिस्थिति से अलग नहीं रख पाता। जब समत्व की अवस्था जागती है तब तटस्थता भी जाग जाती है। तटस्थ व्यक्ति जानता है, पर भोगता नहीं। जानने वाला न दुखी होता है और न सुखी होता है। भोगने वाला दुखी भी होता है और सुखी भी होता है। तटस्थता मानसिक स्वास्थ्य की एक कसौटी है। प्रतिकूल व्यवहार वही व्यक्ति करता है जो मन से दुर्बल है, मन से अस्वस्थ है। जो व्यक्ति—**शठे शाठ्यं समाचरेत्**—या **ईंट का जवाब पत्थर से**—प्रवृत्ति से ग्रस्त हैं, वे व्यक्ति वास्तव में ही मन से रोगी हैं। यदि वे स्वस्थ होते तो इस प्रकार के सूत्रों का प्रतिपादन नहीं होता।'

प्रज्ञा जागरण जीवन का उत्कर्ष है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रज्ञा की साधना की है और प्रज्ञा का जीवन जी रहे हैं। उनके शब्दों में जो इंद्रियों और मन से परे चला जाता है, उसकी प्रज्ञा का जागरण होता है। अज्ञ से महाप्रज्ञ बनने की साधना सचमुच आह्लादकारी है। महाप्रज्ञ वह होता है जो बुद्धि और मेधा के पार पहुंचकर ऋतंभरा प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रज्ञा-विकास का रहस्योद्घाटन करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा है—'प्रज्ञा के लिए क्रोध और अहं विलय आवश्यक है। ज्ञान के विकास के बावजूद यदि क्रोध और अहं का विलय नहीं होता है, तो व्यक्ति स्वच्छ और स्वस्थ नहीं बन सकता एवं उसका ज्ञान भी फलदाई नहीं बन सकता। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी ने मुझे दार्शनिक बनाया, फिर दर्शन जगत से निकालकर महाप्रज्ञ बनाया।'

निस्संदेह आचार्यश्री महाप्रज्ञजी प्रज्ञा-संपन्न महापुरुष हैं। वे अतींद्रिय चेतना के धनी हैं। उन्होंने इंद्रिय निग्रह और क्रोध शमन की जबर्दस्त साधना की है। इंद्रिय और मन से परे रहने में निष्णात् आचार्यप्रवर ने अहंकार और ममकार की चेतना का विसर्जन किया है। उपशम की साधना, विधायक दृष्टिकोण, संयम और मानसिक संतुलन के सघन अभ्यास ने उन्हें **प्रज्ञा के शिखर** पर प्रतिष्ठित किया है। आचार्यप्रवर के विचार युग चेतना को नया बोध देने वाले हैं, इसलिए वे स्वप्रभावेण युगपुरुष और युगप्रधान हैं। वे उपशम-सुख के प्रेरणास्रोत हैं। वे कहते हैं—'हमारे जीवन का लक्ष्य है मन की शांति। मन की शांति को पाने का मार्ग पदार्थों का भोग नहीं, पदार्थ निरपेक्ष चेतना का विकास है। जिस व्यक्ति के जीवन में शांति और उपशम भाव का विकास होता है, वह अनेक बड़ी बीमारियों से सहज ही बच जाता है। उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत हो जाती है।' व्यक्ति और समाज को प्रतिबोध के स्वर में वे कहते हैं—'हर मनुष्य यह सोचे कि मुझे यह दुर्लभ मानव जन्म मिला है। मैं कम से कम उससे नीचे तो न जाऊं। जिसमें यह चिंतन प्रबल होगा, उसका भाव भी शुद्ध रहेगा और आचरण भी पवित्र रहेगा। नैतिक मूल्यों के ह्रास का कारण यही है कि व्यक्ति का ध्यान पदार्थ और धन में अटका हुआ है। वह भाव-शुद्धि और आचरण-शुद्धि के प्रति जागरूक नहीं है।

वस्तुतः भाव-शुद्धि और आचरण-शुद्धि—ये दो चाबियां हैं। जिसे सद्गति पाना है, उसे भाव-शुद्धि और चरित्र-शुद्धि का जीवन जीना चाहिए।'

मनुष्य ज्ञान और आचार के विकास की दिशा में सदा उन्मुख रहे। यही धार्मिक चेतना के उन्नयन का सौष्ठव उपाय है। वे कहते हैं—'आत्मा दिखाई नहीं देती। जो दिखाई देता है—वह सारा जड़ है, अचेतन है। भोजन, पानी, दवा, मकान व उपभोग के अन्य सभी साधन अचेतन हैं। हम निरंतर अचेतन के साथ रहें, पर उसमें आसक्ति न हो। इसका एक ही उपाय है चेतना का ज्ञान और चेतना का आकर्षण।' करणीय के प्रति मानव समुदाय को उत्प्रेरित करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'धार्मिक व्यक्ति सदा जागरूक रहता है कि तीव्र कर्म का बंधन न हो जाए। कोई भी क्षण ऐसा नहीं है, जब कर्म का बंधन नहीं हो रहा है, किंतु गाढ़ और चिकने कर्म का बंधन न हो—इस जागरूकता का नाम है धर्म की साधना। जो कर्म-बंधन के प्रति जागरूक नहीं होता वह कैसा धार्मिक है?' ❖

एक ज्योतिपुरुष; एक शिल्पकार

पृष्ठ 28 का शेष

मानवीय एकता में विश्वास रखने वाले होते हैं, वही देश सही अर्थों में विकास के शिखर का स्पर्श कर सकता है।'

आदर्श और व्यवहार की विसंगतियों पर चोट करते हुए आचार्यश्री तुलसी तेजस्वी स्वरों में कहते थे—'राजनेता अपनी पार्टी को प्रमुख मानता है और राष्ट्र को गौण, समाजसेवी अपने घर को प्रमुख मानता है और समाज को गौण, धार्मिक व्यक्ति अपने संप्रदाय को प्रमुख मानता है और धर्म को गौण तथा आध्यात्मिक व्यक्ति क्रियाकांडों को महत्त्व देता है और अध्यात्म की उपेक्षा करता है'—ये सब मिथ्या दृष्टिकोण की निष्पत्तियां हैं। अणुव्रत के द्वारा इन विसंगतियों को मिटाकर सिद्धांत और व्यवहार में संवादिता स्थापित करने का बीड़ा उन्होंने उठाया था। अणुव्रत के द्वारा उन्होंने अनीति, अनाचार और भ्रष्टाचार से जर्जरित लोक जीवन में नीति, सदाचार और प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा की। अणुव्रत मनुष्यता को बचाने का संकल्प है। आचार्यश्री तुलसी का क्रांत चिंतन है—'जब तक मनुष्य अच्छा मनुष्य नहीं बनेगा, मनुष्यता की सुरक्षा असंभव है।' धार्मिकता और ईमानदारी—जो जीवन से छिटक रहे हैं, उन्हें जोड़ने और मिलाने का काम अणुव्रत कर रहा है। भारतीय जन-मानस की रुग्ण मानसिकता के उपचार हेतु अणुव्रत संजीवनी-शक्ति है। इस तथ्य से आज लोकचेतना सहमत हो या न हो, लेकिन आने वाले समय में जब भारत का इतिहास लिखा जाएगा—अणुव्रत का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा। नैतिक क्रांति के सूत्रधार के रूप में आचार्यश्री तुलसी का सदा स्मरण किया जाएगा।

आचार्यश्री तुलसी से संयम और सात्त्विक जीवन जीने की प्रेरणा पा कर लाखों लोगों ने अपनी दृष्टि, दिशा और जीवनशैली में अद्भुत बदलाव का अनुभव किया। खान-पान की शुद्धि एवं नशामुक्ति अभियान के अंतर्गत लाखों लोग निरामिष भोजी बने और नशीले पदार्थों के सेवन से छुटकारा पाया।

अहिंसा और विश्वशांति के पुरोधा

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हिंसा की ज्वाला में झुलसते अशांत विश्व ने आचार्यश्री तुलसी द्वारा संप्रेषित शांति के संदेश से शांति और राहत का अनुभव किया। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिनकी अहिंसा विषयक सोच ने समूची भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। उन्होंने प्रेम, करुणा एवं सद्भावना के द्वारा अहिंसक क्रांति का सिंहनाद किया। वे पहले संत थे, जिन्होंने अहिंसा के प्रशिक्षण और प्रयोग की बात कही। प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, अहिंसा सार्वभौम—ये उनके उर्वर मस्तिष्क से उपजी ऐसी परिकल्पनाएं हैं, जिनके आलोक में संपूर्ण विश्व में श्रेयस, सुख और शांति की संभावनाएं प्रखरता के साथ उभर रही हैं। वर्तमान के हिंसा, आतंकवाद और संभावित परमाणु युद्ध के तनावपूर्ण माहौल में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा संचालित ऐतिहासिक अहिंसा यात्रा तुलसी के सपनों का ही रूपायन है।

आने वाली कई पीढ़ियां संतों की लंबी शृंखला में हमेशा याद रखेगी कि इतिहास में एक ऐसे ज्योतिर्मय संत का आविर्भाव हुआ था, जिसने समग्र विश्व में अध्यात्म का आलोक बिखेरा था। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में उत्पन्न हो कर जिसने पूरी सदी के भाल को गौरवान्वित किया उस शताब्दी पुरुष का नाम है—अणुव्रत प्रवर्तक, राष्ट्रसंत आचार्यश्री तुलसी। उस ज्योतिपुरुष की एक-एक ज्योति-रश्मि को अनेकशः प्रणाम। ❖

बहता निर्झर प्रसन्नता का

❀ साध्वी विश्रुतविभा

आचारांग सूत्र में भी प्रसन्नता की चर्चा मिलती है—'समयं तत्थुवेहाए, अप्पाणं विप्पसाए'—जहां समता का आचरण होता है, रागात्मक और द्वेषात्मक विचार नहीं होता, वहां व्यक्ति सतत प्रसन्नता की अनुभूति करता है। प्रसन्नता की स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार और आचरण अलग तरह का होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार निर्विचार अवस्था में जो प्राप्त होता है, वह है प्रसन्नता। निर्विकल्प और निर्विचार अवस्था में ही व्यक्ति का आत्मा के साथ संपर्क स्थापित होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी लोगों की भीड़ में रहते हुए भी अकेले रहते हैं। विचारों की दुनिया में जीते हुए भी वे निर्विचारता का सतत स्पर्श कर सकते हैं। इसलिए उनके मुख पर हर क्षण प्रसन्नता थिरकती रहती है।

८८वां जन्म दिवस : प्रज्ञा दिवस
आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी : 12 जुलाई
श्रद्धाभिवादन

प्रसन्नता जीवन का सर्वोत्कृष्ट रसायन है। प्रसन्नता वह रसायन है, जो मनुष्य को निरंतर शक्ति-संपन्नता, स्वास्थ्य और दीर्घायु का उपहार देता है। इस रसायन का आसेवन करने वाला व्यक्ति प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में चिरयौवन को प्राप्त कर सकता है। हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न रहना चाहता है। अनेक व्यक्ति अपने जीवन में इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि से वंचित भी रह जाते हैं, पर वे व्यक्ति सौभाग्यशाली होते हैं, जिन्हें प्रसन्नता का उपहार सहज सुलभ होता है।

तीन कोटि के मनुष्य देखे जाते हैं—

स्वाभाविक प्रकृति से प्रसन्न मनुष्य, प्रयत्नपूर्वक प्रसन्न रहने वाले मनुष्य और किसी भी सूरत में प्रसन्न नहीं रह पाने वाले मनुष्य।

यदि हम आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की ओर गौर करें तो उनकी गणना प्रथम कोटि के मनुष्यों में की जा सकती है। वे हर क्षण स्वाभाविक रूप से प्रसन्न रहने वालों की गणना में आते हैं। प्रसन्नता उनके जीवन की जैसे सहचरी ही हो। उनके आभामंडल के क्षेत्र में रहने वाला कोई भी व्यक्ति इस सचाई का साक्षात्कार कर सकता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी और प्रसन्नता में व्याप्ति संबंध कहे जा सकते हैं। वस्तुतः प्रसन्नता से अधिक मूल्यवान कोई दूसरी वस्तु नहीं है। यदि यह मानें कि लोग हीरे-जवाहिरात को सबसे अधिक मूल्य देते हैं, तो कहना होगा कि प्रसन्नता अमूल्य है। धन, सत्ता और संपत्ति के द्वारा उसे हस्तगत नहीं किया जा सकता। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति सुख-सुविधा और अनुकूलता की स्थिति में भी प्रसन्न नहीं रह पाता और एक व्यक्ति अभाव और प्रतिकूलता की स्थिति में भी प्रसन्न रह सकता है। इसका रहस्य क्या है? प्रसन्नता के लिए क्या कोई महामंत्र है? यदि हम प्रसन्नता के बाधक तत्त्वों का निरसन कर सकें तो प्रसन्नता हमारे जीवन की भी सहचरी बन सकती है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी इसीलिए सदा प्रसन्न रहते हैं कि उन्होंने प्रसन्नता के बाधक तत्त्वों पर विजयश्री का वरण कर लिया है।

हमें प्रसन्नता के बाधक तत्त्वों पर गौर करना चाहिए।

प्रसन्नता का पहला बाधक तत्त्व है—क्रोध। जिस व्यक्ति का

आवेश नियंत्रित नहीं होता, वह कभी भी प्रसन्नता का जीवन नहीं जी सकता। सब जानते हैं कि सामान्य व्यक्ति क्रोध को सर्वथा उपशांत नहीं कर सकता। प्रलंब साधना के द्वारा यह साध्य होता है। क्रोध जड़ सहित भले ही समाप्त न हो पाए, पर यह संवेग न बने, इसलिए सतत जागरूक रहने की अपेक्षा है। जब क्रोध संवेग का रूप लेता है, तब व्यक्ति न केवल स्वयं दुखी एवं विषण्ण बनता है, अपितु परिवार और परिपार्श्व भी विक्षुब्ध और उद्वेलित हो जाता है। जब व्यक्ति का क्रोध संवेग बनता है, तब वह प्रसन्नता का श्वास नहीं ले सकता। पूर्ण प्रसन्नता की अवस्थिति प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि क्रोध संवेग न बने। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मानस क्रोध की तरंगों में कभी तरंगित नहीं होता, उसके संवेगात्मक रूप की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने जीवन का विश्लेषण करते हुए वे अनेक बार कहते हैं—'सात-आठ दशक के मुनि जीवन में चार-पांच बार भी गुस्सा आया हो, याद नहीं है।' उपशम की यह साधना ही उनकी प्रसन्नता का साक्ष्य है।

महाभारत में क्रोध को छोड़ने का परामर्श दिया गया है, पर यह बड़ा दुःसाध्य कार्य है।

षड्दोषा पुरुषेणेह हातव्यं भूमिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता।।

आदमी क्रोध करना नहीं चाहता, फिर भी क्रोध क्यों आता है? जैन दर्शन के अनुसार क्रोध-वेदनीय का उदय क्रोध का निमित्त बनता है। आयुर्विज्ञान के अनुसार एड्रिनलिन का अतिरिक्त स्राव क्रोध की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी माना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार पित्त की उग्रता और मनोविज्ञान के अनुसार युयुत्सा क्रोध को जन्म देते हैं। इस संदर्भ में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के व्यक्तित्व का अध्ययन करें तो अनुभव होता है कि क्रोध को उद्दीप्त करने वाले बीजों के लिए उनके अवचेतन मन की भूमि ऊसर बन गई है। यही कारण है **उवसमसारं सामण्णं** उनके जीवन का आदर्श बना हुआ है। जहां उपशम है, वहां प्रसन्नता है। उपशम और प्रसन्नता, दोनों में अविनाभावी संबंध है।

प्रसन्नता का दूसरा बाधक तत्त्व है—अहंकार। जो व्यक्ति अहंकार की वृत्ति से ग्रस्त है, वह प्रसन्नता के दरवाजे पर कभी भी दस्तक नहीं दे सकता। अहंकारयुक्त व्यक्ति अपने से छोटों को देखता है तो उसमें Superiority Complex पैदा होता है और अपने से बड़ों को देखता है तो Inferiority Complex. उच्चता और हीनता की वृत्ति प्रसन्नता में बाधा पहुंचाती है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का चित्त इन दोनों वृत्तियों से सर्वथा मुक्त है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी अपने जीवन के नौवें दशक के उत्तरार्द्ध में चल रहे हैं। संपूर्ण धर्मसंघ का दायित्व उनके सबल और सक्षम कंधों पर है। संपूर्ण धार्मिक परिवार आपके इंगित की आराधना करने के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा, पूर्णरूपेण समर्पित है। आपके मुखारविंद से निःसृत छोटे-से-छोटे निर्देश की प्रतिपालना में प्रत्येक व्यक्ति तत्पर रहता है। तेरापंथ धर्मसंघ के लिए गुरु का प्रत्येक शब्द ब्रह्मवाक्य होता है। एक ओर जहां इतना अपरिमेय सहज सम्मान और दूसरी ओर अहंकार का लेश भी नहीं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है।

समत्व चेतना से प्रदीप्त इस महापुरुष के लिए सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ व्यक्ति हो या निम्नतम स्तर पर बैठा व्यक्ति; सभी उनसे अभिनव संबोध पाकर हर्षित होते हैं। यह उनकी समत्व चेतना की ही निष्पत्ति है कि हर एक स्थिति में वे आत्मतुला की गरिमामय भूमिका पर ही अवस्थित दिखाई देते हैं।

प्रसन्नता का तीसरा बाधक तत्त्व है—माया। जो व्यक्ति मायावी होता है, वह कभी भी प्रसन्नता का वरण नहीं कर सकता। उसके रहते व्रत या धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। उमास्वाति ने इसी आशय से लिखा है—व्रती या धार्मिक वही हो सकता है, जो निःशल्य होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी निःशल्य होकर स्वयं धर्म और अध्यात्म की आराधना कर रहे हैं और सैकड़ों-सैकड़ों लोगों का पथदर्शन भी कर रहे हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र का प्रसंग है। भगवान महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा—'ऋजुता से जीव क्या प्राप्त करता है?'

भगवान ने कहा—'ऋजुता से वह शरीर, मन, भाषा और वाणी की सरलता और अविसंवादन वृत्ति को प्राप्त करता है।'

हम देखते हैं कि महाप्रज्ञ और ऋजुता, दोनों पर्यायवाची हैं। जो ऋजु होता है, वह सबके लिए आकर्षण का हेतु बनता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के प्रति आम जनमानस में उत्तरोत्तर श्रद्धा के भाव वृद्धिंगत हो रहे हैं। उसका प्रमुख कारण है—उनकी ऋजुता। ऋजु

व्यक्ति की प्रसन्नता कभी खंडित नहीं होती। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का दृढ़ विश्वास है—'सरलता से जीने वाला व्यक्ति स्वस्थ और दीर्घ जीवन जीता है। कुटिलता से रहने वाला व्यक्ति बीमार और अल्प-आयुष्य वाला होता है।'

प्रसन्नता का चौथा बाधक तत्त्व है—लोभ। जहां लोभ होता है, वहां व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है। वहां सुख का नामोनिशान भी नहीं रहता।

यूनान के मेलिडिमस ने अपने शिष्य से पूछा—'सुख क्या है?' शिष्य—'मन-इच्छित वस्तु का मिल जाना सुख है।' मेलिडिमस—'इससे बड़ा एक सुख और है, वह है—लोभ का संयम करना, इच्छा का संयम करना, मिली हुई वस्तु में तृप्ति व आनंद का अनुभव करना।'

जहां लोभ की चेतना नहीं होती, वहां व्यक्ति सदैव प्रसन्नता का अनुभव करता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी लोभ की ग्रंथि से पूरी तरह मुक्त हैं, इसलिए अनवरत प्रसन्नता का ही संवेदन करते हैं।

'ट्रिप्टोफेन' एक आवश्यक अमीनो एसिड है, जो 'न्यूरोट्रांसमीटर'—'सेराटोनिन' के निर्माण में अहम भूमिका निभाता है। 'सेराटोनिन' शांत करने वाला 'न्यूरोट्रांसमीटर' है, जो लोगों में सफलता और संतुष्टि का एहसास करवाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के मस्तिष्क में 'सेराटोनिन' नामक 'न्यूरोट्रांसमीटर' प्रचुर मात्रा में निर्मित हो रहा है। यही वजह है कि वे हर क्षण एक संतुष्टि का अनुभव करते हैं। प्रसन्नता ही संतोष की नित्य सहयायी है।

प्रसन्नता का पांचवां बाधक तत्त्व है—ईर्ष्या। ईर्ष्यालु व्यक्ति स्वयं को नहीं देखता, दूसरे को देखता है। इसलिए वह कभी भी प्रसन्न नहीं रह सकता। अग्नि से जले हुए व्यक्ति के घाव पर 'बर्नोल' दवा लगाकर उसका उपचार किया जा सकता है, किंतु ईर्ष्या की आग में जलने वाले व्यक्ति का उपचार बड़ा दुष्कर है। ईर्ष्यालु व्यक्ति न तो स्वयं प्रसन्न रहता है और न अपनी परिधि में रहने वाले व्यक्ति को प्रसन्न रहने देता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के उज्ज्वल आभावलय में ईर्ष्या जैसे दुर्गुण को कहीं स्थान नहीं मिल रहा है। इसलिए प्रसन्नता का निर्मल झरना उनकी चैत्य-सरिता में सतत प्रवाहित रहता है। संस्कृत साहित्य में एक बहुत सुंदर श्लोक प्राप्त होता है—

सुरम्यान् कुसुमान दृष्ट्वा यथा सर्वं प्रसीदति।
प्रसन्नतानपरान् दृष्ट्वा तथा त्वं सुखमाप्नुयाः।।

जैसे सुंदर फूलों को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं, वैसे ही दूसरों को प्रसन्न देखकर अथवा दूसरों की समृद्धि को देखकर तुम प्रसन्नता को प्राप्त करो। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जब-जब अपने सम्मुख किसी प्रसन्न व्यक्ति को देखते हैं, तब वे स्वयं प्रसन्नता से सराबोर हो जाते हैं।

प्रसन्नता का छठा बाधक तत्त्व है—द्वंद्व। उत्तराध्ययन सूत्र में द्वंद्वों का उल्लेख किया गया है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा।
समो निंदा पसंसासु तहा माणावमाणओ।।

लाभ-अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मृत्यु, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान—ये सब द्वंद्व हैं। द्वंद्वात्मक चेतना जहां रहती है, वहां व्यक्ति प्रसन्न नहीं रह सकता। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वंद्वातीत चेतना की साधना के लिए समर्पित हैं। इसलिए सदैव प्रसन्न रहते हैं।

हर्ष और प्रसन्नता—ये दो शब्द हैं और दोनों का प्रयोग हम करते हैं। हर्ष और प्रसन्नता एक नहीं है। हर्ष के साथ शोक जुड़ा रहता है। हर्ष और शोक के परे की स्थिति है—प्रसन्नता। प्रसन्नता चेतना की विशिष्ट अवस्था है, जहां आंतरिक आनंद की अनुभूति होती है। उसका प्रतिपक्ष होता ही नहीं। द्वंद्वातीत चेतना में अवस्थित होने के कारण आचार्यश्री महाप्रज्ञजी बाह्य घटनाओं और बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होते।

आचारांग सूत्र में भी प्रसन्नता की चर्चा मिलती है—**समयं तत्थुवेहाए, अप्पाणं विप्पसाए**—जहां समता का आचरण होता है, रागात्मक और द्वेषात्मक विचार नहीं होता, वहां व्यक्ति सतत प्रसन्नता की अनुभूति करता है। प्रसन्नता की स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार और आचरण अलग तरह का होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार निर्विचार अवस्था में जो प्राप्त होता है, वह है प्रसन्नता। निर्विकल्प और निर्विचार अवस्था में ही व्यक्ति का आत्मा के साथ संपर्क स्थापित होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी लोगों की भीड़ में रहते हुए भी अकेले रहते हैं। विचारों की दुनिया में जीते हुए भी वे निर्विचारता का सतत स्पर्श कर सकते हैं। इसलिए उनके मुख पर हर क्षण प्रसन्नता थिरकती रहती है।

मन इतना चंचल है कि निरंतर विचार की तरंग उठती

रहती है। एक सेकंड में तैंतीस से ज्यादा विचार के प्रकंपन होते हैं। जो व्यक्ति पांच मिनट भी खाली रहना जानता है, उसे स्वयं समाधान मिल जाता है। उस समय न स्मृति रहती, न चिंतन और न कल्पना। इस स्थिति में जो रहने का अभ्यासी होता है, वह भीतर की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी खाली रहने का गुर जानते हैं, इसलिए हर पल प्रसन्नता से सराबोर रहते हैं।

यह एक अनुभूत सच है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की ऊर्जस्वल सन्निधि अलौकिक सुख का संचार करती है, अवसाद को आह्लाद में बदल देती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रसन्नता आचार्यश्री के रोम-रोम में प्रस्फुटित हो रही है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'निर्मल चेतना और प्रसन्नता में घनिष्ठ संबंध है। कषाय रंजित चेतना मन की निर्मलता का अपहरण कर लेती है और प्रसन्नता उदासी में अथवा अवसाद में बदल जाती है। कषाय जितना उपशांत, उतनी ही मन की निर्मलता और जितनी मन की निर्मलता, उतनी प्रसन्नता।'

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अलौकिक व्यक्तित्व के आलोक में प्रसन्नता के रहस्य-सूत्रों का विश्लेषण जीवन को नई दृष्टि और नई दिशा दे सकता है। व्यक्ति को प्रसन्नता की जीवन-स्पर्शी भाषा अथवा परिभाषा का साक्षात्कार हो सकता है और वह चेतना के ऊर्ध्वारोहण के लिए दिशासूचक यंत्र का काम कर सकता है। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक–आध्यात्मिक स्तर के विचार–प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों–कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित–प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ–साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ–सुथरी, बिना काट–छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक–आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल–मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी–कविता
भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र–व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति रचनाकार
पहले से ही अपने पास रखें

खिड़कियों से बाहर

रामनारायण शुक्ल

मिलन को इस तरह उन दोनों खिड़कियों के पास खोया-खोया-सा बैठा देखकर न जाने कितनी बार मैंने अपने को अपराधी महसूस किया है। कभी-कभी तो घर तक बदलने के बारे में सोचने लगता हूं। पर दादीमां के बारे में सोचते ही यह विचार मन में रह नहीं पाता। दादीमां के मेरे ऊपर एहसान ही एहसान हैं।

मुझे आज भी याद है, डाक्टर सेनगुप्ता ने कहा था, 'आप इन्हें किसी हिल-स्टेशन ले जाइए। यहां कलकत्ते में तो अच्छे होने की आशा आप स्वप्न में भी नहीं कर सकते।' पर मसूरी की जलवायु का सुखद वातावरण भी नीता को न बचा सका। छः महीने भी पूरे न हो पाए थे कि....। नीता की मृत्यु के तीन दिन बाद ही मैं सीधा मसूरी से कलकत्ता चला आया था। मेरे पुराने फ्लैट में नए किराएदार आ गए थे। कलकत्ते में जगह खाली ही कब रहती है। एक साल के मिलन को गोद में लिए-लिए, न जाने रहने की जगह के लिए मैं कितना भटका हूं। कभी-कभी तो लगता था, एक अच्छे कमरे के अभाव में मिलन को ही खो देना पड़ेगा। ऐसे में दादीमां ने अपने फ्लैट में जगह देकर मेरे ऊपर जो एहसान किया था, उसी का खयाल कर आज सहसा घर बदलने का विचार मन में अधिक देर नहीं टिकता।

दादीमां के पास तीन कमरे थे। पैसे मेरे पास अधिक नहीं थे, इसलिए मैंने उनसे एक ही कमरा लिया। कानून से न सही पर वैसे पूरा फ्लैट अब मेरा ही है। दादीमां अकेले ही घंटों कोने की कोठरी में बैठे जप किया करती हैं। बाकी समय खोखा (मिलन) की देखभाल करती हैं। एक ही महीने में वे मिलन को इतना प्यार करने लगी थीं कि हम लोगों का संबंध घर का सा हो गया। नीता की मृत्यु के बाद जिस मिलन के बचने की आशा न थी, वही आज सात साल का है।

फ्लैट में कुल पांच खिड़कियां हैं। तीन खिड़कियों से साधारण मकान, साधारण खाते-पीते लोग दिखाई पड़ते हैं। शेष दो खिड़कियों से दिखाई पड़ने वाला दृश्य असाधारण है। इन दोनों खिड़कियों से मिलन को बाहर की तरफ देखते देखकर मुझे कभी अच्छा नहीं लगता। इनसे बाहर की तरफ देखते समय उसके चेहरे पर अजीब-अजीब से भाव रहते हैं। न जाने क्या-क्या सोचता रहता है?

'दूसरे दिन मेरी तबियत कुछ ठीक हो गई। मैं ऑफिस भी गया। सारा दिन मैं यही सोच रहा था, यह घर अब छोड़ना ही होगा। मैं पहली खिड़की से दिखाई पड़ने वाले बाग के बीच बने हुए संगमरमर के महल को नहीं हटा सकता। दूसरी खिड़की से दिखाई पड़ने वाले दृश्य को चाहने पर भी मैं नहीं मिटा सकता हूं.... पर मैं यह घर तो बदल सकता हूं। किसी ऐसी जगह खोखा को रख सकता हूं, जैसी जगह मेरी मां ने मुझे बचपन में रखा था। जहां एक तरह के घर हों। एक तरह के लोग रहते हों।'

कहानी

पहली खिड़की से एक बहुत बड़ा संगमरमर का मकान दिखाई पड़ता है। यह एक बहुत बड़े बाग के बीच में बना हुआ है। मकान के चारों तरफ हर तरह के फूल लगे हुए हैं। मैं देखता हूं, खोखा की आंखें उस तरफ देखते समय हटती नहीं। वह घंटों एकटक उस खिड़की से मकान की तरफ देखता रहता है। न जाने उसका सात वर्ष का कोमल हृदय उसे देखकर क्या सुख या दुख पाता है। उस तरफ एकटक देखते रहने की उसकी इच्छा कभी कम नहीं होती।

उस दिन रात तीन के लगभग एकाएक नींद टूट गई। मैंने देखा वह उसी खिड़की के पास खड़ा सामने चांदनी में चमकते हुए मकान की तरफ देख रहा था। उसे उस तरह खड़े देखकर फिर मुझे नींद नहीं आई। वह खिड़की के पास उसी तरह चार बजे तक खड़ा रहा। फिर शायद उसे नींद आने लगी, इसलिए वह वहीं फर्श पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद नींद आ जाने से वहीं फर्श पर लेट गया। न जाने क्यों आधे घंटे तक उसी तरह लेटा हुआ, मैं छत की कड़ियां गिनता रहा। उसके बाद उठकर मैंने मिलन को अपने पलंग पर लाकर सुला दिया। मुझे आज भी आश्चर्य है कि उस दिन क्यों मैं उसी समय नहीं उठा। फिर न जाने क्या सोचकर बड़ी देर तक मैं खिड़की से बाहर मकान की तरफ देखता रहा। उसके बाद पलंग के पास आकर मैंने मिलन की ओर देखा तो उसका चेहरा अभी भी वैसा ही खोया-खोया-सा लग रहा था। पलकें बंद होने पर भी लग रहा था, जैसे उसकी आंखें एकटक किसी ओर देख रही हैं। मैं उस छोटे से कमरे में चहल-कदमी करने लग जाता हूं।

दूसरी खिड़की से भी खोखा की दिलचस्पी कभी कम नहीं होती। उससे भी असाधारण दृश्य ही दिखाई पड़ता है। पहली खिड़की से ठीक विपरीत। पीछे एक छोटी-सी जगह में लगभग दो सौ आदमी रहते हैं। पास-पास छोटी-छोटी कोठरियां बनी हुई हैं। चारों तरफ गंदगी का एक पनाला-सा हर समय बहा करता है। कूड़े के छोटे-छोटे पचासों ढेर इधर-उधर बिखरे हुए हैं। इतने सारे आदमियों के बीच बस एक ट्यूबवेल है और पानी के लिए उसी के चारों तरफ सारे दिन भीड़ लगी रहती है। यहां तरकारी वाले, मछली वाले, सड़कों को साफ करने वाले जमादार, छोटे-छोटे मिस्त्री, मजदूर, फेरीवाले, सब एक साथ रहते हैं। रात का अंधेरा यहां के लिए बहुत घना होता है। कोठरियों में छोटे-छोटे दीये या कहीं-कहीं लालटेनें जलती दिखाई पड़ती हैं। दिन को मिला-जुला शोर और रात को मिली-जुली फुसफुसाहटें सुनाई पड़ती हैं। ऐसे समय पहली खिड़की से, सामने के मकान की खिड़कियों के बीच से छनकर आती हुई तरह-तरह की बिजली की रोशनियां दिखाई पड़ती हैं। शोर इसके चारों तरफ भी गूंजता है, पर आदमियों की आवाज का नहीं, तरह-तरह के नाच और गानों का।

दोनों खिड़कियों से देखते समय खोखा के चेहरे पर अजीब-अजीब-सा भाव रहता है। ठीक वैसा ही जैसे पहले-पहल अमेरिकन 'हारर कामिक' पढ़ते समय बच्चों के चेहरे पर रहता है। मुझे उस समय उसके चेहरे की ओर देखने का साहस नहीं होता। मैं अपने-आप को अपराधी महसूस करने लगता हूं।

शाम सात बजे के लगभग मैं लेटा हुआ कोई किताब पढ़ रहा था, तभी खोखा आकर मेरे पैरों के पास चुपचाप बैठ गया। उसे इस तरह बैठे देखकर मैं समझ जाता हूं कि उसे कोई प्रश्न पूछना है। मैंने किताब से ध्यान हटाकर उसकी तरफ देखा तो उसने कहा, 'पिताजी, सदा सच क्यों बोलना चाहिए?'

'इसलिए कि झूठ बोलना अच्छा नहीं।' मैंने जल्दी से बात काटते हुए कहा।

पर मिलन एक ही प्रश्न पूछकर नहीं रुकता। जब से दादीमां ने उसे उपदेशों वाली वह किताब पढ़ाकर याद करा दी है, उसके प्रश्न दिन पर दिन बढ़ते ही जाते हैं।

'पिताजी, राम क्या भरत को बहुत प्यार करते थे?'

'क्यों?'

'किताब में लिखा है।'

'क्या?'

'यही कि छोटे भाई को इसी तरह प्यार करना चाहिए जिस तरह राम, भरत को करते थे।'

इसके बाद वह थोड़ी देर तक चुप रहता है। मैं उसके चेहरे की ओर देखता रहता हूं।

'....और पिताजी क्या भगवान कभी नहीं मरते?'

उसके प्रश्नों को सुनकर मुझे बराबर खीझ-सी होती है। बिना कोई कड़ी बात कहे वह अपने प्रश्न बंद भी नहीं करता। जब भी कभी मैं उसे डांटता हूं, वह सहम कर कोने में खड़ा हो जाता है। ऐसे समय मुझे लगता है, जैसे

वह जबरन अपने ओंठ दाबे हुए है। अभी-अभी प्रश्न उसके मुंह से फूट पड़ेगा।

ऐसे में अधिक देर मैं उसके सामने नहीं रह सकता। घर से बाहर निकल जाता हूं।

बाहर आकर भी मैं उसका खयाल दिल से निकाल नहीं पाता। प्रश्न पूछने जैसा भाव लिए उसका चेहरा बराबर आंखों के सामने तैरता रहता है।

तब मैं जल्दी ही घर लौट आता हूं। अक्सर मैं उसे उसी जगह वैसे ही खड़ा देखता हूं। मैं ठीक से कपड़े भी नहीं बदलने पाता कि पीछे से आवाज आती है।

'पिताजी, क्या नरक में बहुत तकलीफ मिलती है?'

कभी-कभी मैं खीझ जाता हूं। पर अधिकतर मैं इसे प्रगट नहीं होने देता। उसकी गहरी नीली आंखों में मुझे नीता झांकती-सी दिखाई पड़ती है।

नीता....और मैं उसे अपनी गोद में उठा लेता हूं। अपने चुंबनों से उसका चेहरा भर देता हूं।

'क्या पूछ रहे थे, खोखा!'

दादीमां के साथ धीरे-धीरे मैं भी उसे इसी नाम से पुकारने लगा हूं। मिलन नाम नीता ने उसे दिया था। उसके मुंह से यह नाम बहुत अच्छा लगता था। मिलन पुकारते समय मुझे नीता का खयाल आ जाता है। उसकी मृत्यु के बाद एक बार भी मैं मिलन का उच्चारण साफ आवाज में नहीं कर सका।

इस बीच मिलन शायद अपना प्रश्न भूल चुका होता है, वह पूछता है, 'आप मुझे खोखा क्यों कहते हैं?'

'क्यों? क्या यह नाम तुम्हें अच्छा नहीं लगता?'

क्या के उत्तर में वह शायद ही कभी कुछ कहता है। वह केवल प्रश्न करना जानता है। कभी न खत्म होने वाले प्रश्न। कभी-कभी ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर शायद ही कोई कभी दे सके।

तभी सुन पड़ता है, 'आप मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? मुझे जो-कुछ पूछना है, उसे मैं भूल थोड़े सकता हूं।'

'नया? कौन-सा प्रश्न?'

'नरक में सचमुच क्या बहुत तकलीफ देते हैं?'

यह सारी बातें उसने दादीमां की उपदेशों वाली किताब में पढ़ी हैं। पढ़ना वह अभी ठीक से शायद नहीं जानता। दादीमां ने उसे समझाकर याद करा दिया है।

'दादीमां से पूछ लो।' मैं टालने के लिए कहता हूं।

'दादीमां पूछने से कभी कुछ नहीं बतातीं। उन्हें जो कुछ बताना होता है अपने आप बता देती हैं।'

'क्या-क्या उन्होंने तुम्हें बताया है?'

'यही कि बुरा काम करने से आदमी नरक में जाता है, और वहां उसे बहुत तकलीफ दी जाती है।'

'ठीक ही कहा है उन्होंने।' मैं ऊबकर कहता हूं।

तभी दादीमां की मिलन को बुलाने की आवाज सुनकर मैं खुश हो जाता हूं। मिलन उनके पास चला जाता है।

कितनी बार सोचा मिलन को किसी स्कूल में भर्ती करा दूं। पर दादीमां हैं, कि मानती ही नहीं। कहती हैं थोड़ा और बड़ा होने दो, फिर चार या पांच में भर्ती करा देना। तब तक मैं इसे घर ही में पढ़ाती हूं। मुझसे अच्छा और कौन पढ़ा सकता है।

और दादीमां झूठ नहीं कहतीं। एक ही साल में खोखा बहुत कुछ जान गया है। शायद दादीमां उसको पढ़ाने में अपना बहुत समय लगाती हैं। उस दिन शाम मिलन कह रहा था, आप ऑफिस में रहते हैं, उस समय में पढ़ा करता हूं।'

पढ़ा वह सारा समय अवश्य करता है, पर जब नहीं पढ़ता रहता.... तब.... यह मैं एक बार बीमार होने पर जान पाया।

मैं बीमार पड़ा तो मिलन बराबर मेरे पास बैठा रहता, या फिर दूसरी खिड़की से बाहर की तरफ देखा करता। दिन के समय वहां का दृश्य और भी भयानक रहता है। दिन के प्रकाश में हर चीज और भी स्पष्ट दिखाई देती है। यह क्यों ऐसे उस तरफ देख रहा है। आखिर यह ऐसे समय क्या सोचा करता है। मेरा मन करता है, झटके से जाकर खिड़की बंद कर दूं। फिर उसे अपनी गोद में छिपा लूं। पर न जाने क्यों चाहकर भी मैं उठ नहीं पाता। मिलन उसी तरह खिड़की से बाहर की ओर देखता रहता है। उसके चेहरे पर आते-जाते भावों को देखकर मैं आंखें बंद कर लेता हूं।

यह मेरी बीमारी का पांचवा दिन है। न जाने क्यों धीरे-धीरे सब-कुछ मुझे असह्य लगने लग गया है। उफ मिलन...

पहले तो दिन का सारा समय मेरा ऑफिस में बीतता था, और अब जबकि मैं घर में रहता हूं, ...और

मिलन उन दोनों खिड़कियों से बाहर की ओर फैले हुए दो विपरीत दृश्य देखता रहता है। उफ.... यह सब कितना असह्य है। क्या यह सब है? आखिर बच्चे यह सब देखकर क्या सोचते रहते हैं।

ऐसे में मुझे बराबर अपना बचपन याद आता है। दस-बारह छोटे-छोटे घरों का गांव। दूर-दूर तक फैले हुए खेत।

यह सब मैं क्या सोचने में लग जाता हूं। यह खोखा क्या सोच रहा होगा? इस दूसरी खिड़की से हटकर एक ही मिनट बाद जब वह पहली खिड़की से बाहर की तरफ देखेगा, तब क्या सोचेगा? सात वर्ष की उम्र और ये पहली, दूसरी खिड़कियां।

'खोखा, जरा इधर देखो। इस खिड़की से बाहर की तरफ। सामने कैसे बच्चे खिड़कियों से झांक रहे हैं।' मैं पास के कमरे की तीसरी खिड़की की ओर इशारा करता हूं।

पर खोखा हटता नहीं। मैं उससे कभी भी कड़े स्वर में नहीं बोल पाता। नीता.... मैं नीता को कितना प्यार करता था। ....और यह मिलन। नीता कितने प्यार से इसे पुकारती थी। ....मि....ल....न।

दूसरे दिन मेरी तबियत कुछ ठीक हो गई। मैं ऑफिस भी गया। सारा दिन मैं यही सोच रहा था, यह घर अब छोड़ना ही होगा। मैं पहली खिड़की से दिखाई पड़ने वाले बाग के बीच बने हुए संगमरमर के महल को नहीं हटा सकता। दूसरी खिड़की से दिखाई पड़ने वाले दृश्य को चाहने पर भी मैं नहीं मिटा सकता हूं.... पर मैं यह घर तो बदल सकता हूं। किसी ऐसी जगह खोखा को रख सकता हूं, जैसी जगह मेरी मां ने मुझे बचपन में रखा था। जहां एक तरह के घर हों। एक तरह के लोग रहते हों।

शाम मैं थका हुआ-सा घर लौटा तो दादीमां सीढ़ियों के पास खड़ी हुई थीं। देखते ही बोलीं, 'तुम्हारा कोई साथी आया है? तुम्हारे ही कमरे में बैठा दिया है। खोखा भी उन्हीं के पास खेल रहा है।'

कमरे में जाकर देखा राकेश था। खोखा उसकी गोद में बैठा हुआ था। देखते ही बोला, 'भइ रतन, इसको तुमने यह क्या-क्या सिखा दिया है? कितनी बातें करता है! मैं तो घबड़ा गया। आध ही घंटे में इसने मुझसे कितनी तरह के प्रश्न पूछ डाले।

'क्या, क्या?'

'कहां तक बताएं?' उसने प्यार से खोखा के माथे का चुंबन लेते हुए कहा, 'देखते ही इसने पूछा, क्या स्वर्ग में सचमुच आराम है?'

'फिर....'

'फिर क्या? मैंने जल्दी में ऐसे ही हां कर दिया तो आगे कहने लगा। नरक के लोग जो काम करते हैं, सब क्या स्वर्ग वालों के आराम के लिए?'

तब तक सामने दादीमां आकर खड़ी हो गई थीं। मैंने हंसते हुए राकेश से कहा, 'यह सब दादीमां की कृपा है। इन्होंने ही इसे पढ़ाया है। बुरे काम करने से नरक मिलता है और अच्छे काम करने से....'

'एक बात तो भूल ही गया था।' राकेश ने बीच ही में मेरी बात काटते हुए कहा, 'इसने एक प्रश्न और भी पूछा था। मैं तो चकरा गया। कह रहा था नरक के लोगों को तो हर तरह की तकलीफ होगी। कोई चीज खो गई तो अंधेरे के कारण खोज भी नहीं पाते होंगे।'

सुन कर मैंने कुछ कहा नहीं। आगे राकेश ने स्वयं ही कहा, 'न जाने कितनी बातें इसने कीं। मैं तो चुपचाप सुनता रहा। न जाने क्या-क्या सोचता रहता है? देखते नहीं कितना दुबला हो गया है। दो साल पहले मैंने देखा था, तब कितना अच्छा-भला था। किसी क्न्वेंट में भर्ती कर दो। बच्चों के साथ घुला-मिला रहेगा तो इस तरह बेकार की बातें सोचने की आदत छोड़ देगा।'

मैं चुपचाप बैठा ही रहा। दादीमां चाय लाईं। सब लोगों ने पी। उसके बाद भी राकेश ने न जाने दूसरे विषयों की कितनी ही बातें करने की चेष्टा की। पर मेरा मन नहीं लग रहा था। मैं दूसरी ही बातें सोच रहा था। मेरी आंखों में नीता का चेहरा तैर रहा था। नीता जो एक परी की तरह आकाश से उतरकर मेरे जीवन में आई, और उसकी निशानी यह मिलन....

थोड़ी देर बाद राकेश ने जाने के लिए कहा। मैंने उससे ठहरने का आग्रह नहीं किया। न जाने क्यों मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

'चलो मैं तुम्हें नीचे तक छोड़ आता हूं।' उसे जाते देख मैंने कहा।

हम दोनों चुपचाप नीचे उतर आए। नीचे गली में आकर राकेश ने कहा, 'एक बात और याद आ गई। न जाने यह खोखा क्या-क्या सोचता रहता है? अभी-अभी मुझे खयाल आया।'

'क्या ?'

'बातों के बीच एक बार इसने मुझसे कहा—दादीमां कहती हैं, स्वर्ग ऊपर है और नरक नीचे। दादीमां बहुत जानती हैं। उन्होंने ठीक ही कहा था। पर न जाने क्यों उन्होंने मुझे यह नहीं बताया था, कि ज्यादा आदमियों को नरक मिलता है, और कम को स्वर्ग। इतने छोटे नरक में कितने ज्यादा आदमी रहते हैं।'

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। आगे राकेश ने फिर कहा, 'मैंने कितना भी चाहा कि जान सकूं, यह सब क्या कह रहा है, पर समझ ही नहीं आया। इसे देखकर तो नीता भाभी की याद आती है। तुम्हें याद है? जब भी कभी वे उदास रहती थीं, तो अस्फुट स्वर में जो कुछ भी कहती थीं, उसमें से आधी बातें हम नहीं समझ पाते थे।'

राकेश आगे शायद कुछ और भी कहता। पर मेरा सर चकराने लगा था, इसलिए मैं उससे फिर कभी आने के लिए कहकर लौटने लगा। दरवाजे तक आकर मुझे शर्माजी की बात याद आई। आज उन्होंने बुलाया था। इसलिए न चाहते हुए भी मैं बाहर की तरफ लौट आया।

लगभग सात का समय था। मैं बाहर से अपने कमरे में आया तो खोखा मुझे देखते ही बोला, 'पिताजी, आपने एक बात देखी।'

'क्या ?'

'आज स्वर्ग में नरक से भी ज्यादा अंधेरा है।' उसके चेहरे पर आश्चर्य का भाव था।

पहले तो मेरी समझ में कुछ नहीं आया। पर तभी सहसा मेरी दृष्टि पहली खिड़की से दिखाई पड़ने वाले मकान पर पड़ गई। वहां अंधेरा था। शायद अभी-अभी लाइट फ्यूज हुई थी।

दूसरी खिड़की से शोरगुल की आवाज उसी तरह आ रही थी। कोठरियों के भीतर कहीं लालटेन, कहीं दिये जल रहे थे।

मेरी आंखें खोखा के चेहरे से हटाए नहीं हटतीं।

तब तक दादीमां भी कमरे में आ जाती हैं। शायद वह नहीं समझ पा रही हैं, कि मैं खोखा के चेहरे की तरफ इस तरह क्यों देख रहा हूं। ❖

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

जार्ज लुई बोर्हेस* की कविताएं

आत्मलोप

कोई तारा नहीं बचेगा रात में—
नहीं बचेगी रात भी।
मैं नहीं रहूंगा और नहीं रहेगा
                    मेरे साथ
इस असह्य विश्व का बोझ।
लोप कर दूंगा मेरे साथ
पिरामिडों, मैडेलियनों, महाद्वीपों और
                    चेहरों का।
मिट जाएगा एकत्रित अतीत
मिट्टी कर दूंगा इतिहास—मिट्टी की मिट्टी।
अब देख रहा हूं अंतिम सूर्यास्त
सुन रहा हूं आखिरी पाखी—
शून्य है मेरी विरासत किसी नहीं को।

मैं हूं

मैं हूं वह जो जानता है खुद को
उतना ही निस्सार
जितना वह जो शीशे और खामोशी के दर्पण में
अनुकरण करता है अपने भाई के बिंब या देह का—
एक ही बात है।
खामोश दोस्तो, मैं हूं वह जो जानता है
कहीं नहीं है कोई क्षमा या प्रतिशोध
निरी विस्मृति के सिवा—
यही समाधान है ईश्वर का
इंसानी नफरतों के लिए।
अपनी आश्चर्यजनक भटकनों के बावजूद
मैं हूं वह जो कभी नहीं सुलझा पाया
समय की भूलभुलैया—अकेला, बहुल, थका हुआ
अजनबी, खुद अपना और किसी का भी नहीं।
मैं कोई नहीं हूं।
कोई तलवार नहीं रखी किसी युद्ध में।
एक प्रतिध्वनि हूं मैं, एक रिक्ति, अवस्तु।

लापता

चुप हो गई है आवाज
झुटपुटे में खोए पाखी की।
तुम जो भटक रहे हो बगीचे में
जानता हूं
लापता है कुछ तुम से।

प्रतिच्छायाएं

वक्त खेलता है शतरंज
मोहरों के बिना।
एक शाख की चरचराहट
कुतरती जाती है रात को।
बाहर, मैदान खोद रहा है
सपनों और गर्द की अनंत ढेरियां।
हम दोनों प्रतिच्छायाएं हैं
अन्य छायाओं—गौतम, हेराक्लिटस—की।

गौण कवि

गुमनामी है मंजिल
कुछ जल्दी ही
पहुंच गया हूं मैं।

अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरण :
—नन्दकिशोर आचार्य

*अर्जेंटाइना के इस्पहानी कवि

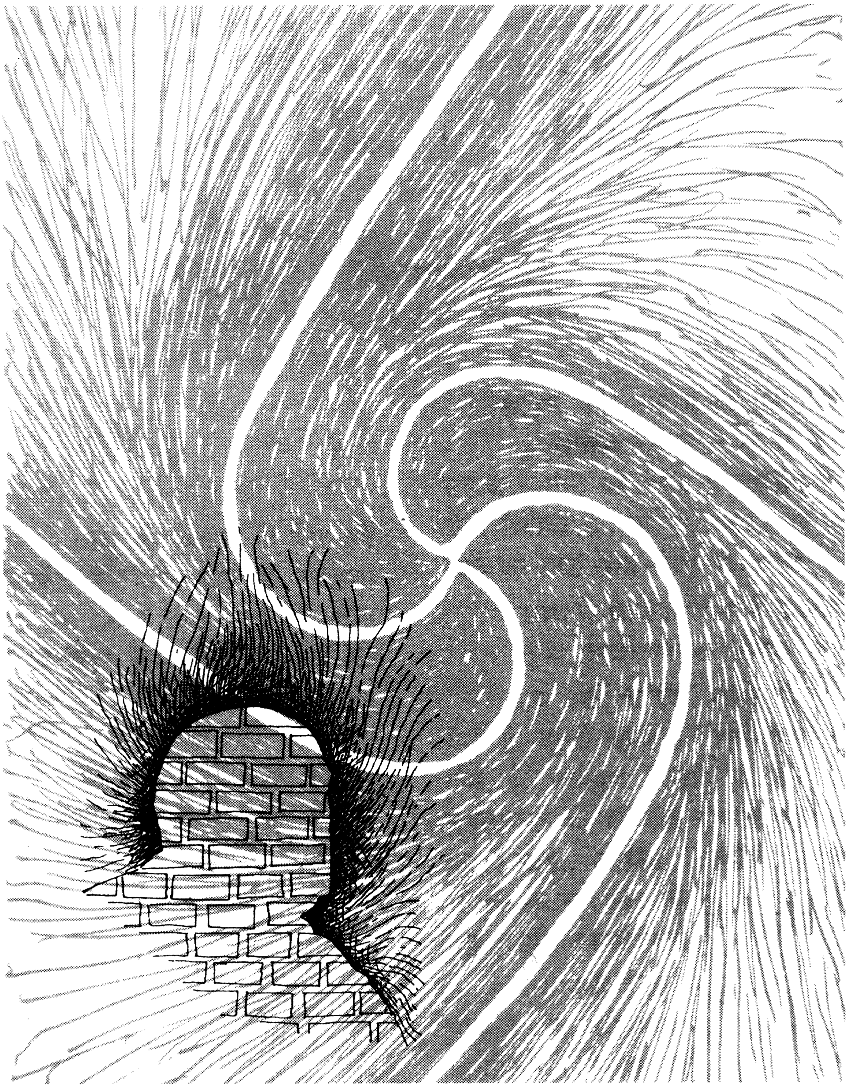

शीलन

हमारे भीतर जाने किस-किस प्रकार के विचारों का विशाल भंडार होता है और हम उनका बोझा लिए फिरते हैं। यदि हम उन विचारों का गंभीरतापूर्वक विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि उनमें से एक बहुत बड़ा प्रतिशत निरर्थक वस्तुओं की भांति निरर्थक विचारों का है। हम रात-दिन विचारों की दुनिया में डूबे रहते हैं। व्यतीत के बारे में सोचते हैं, पर हमारा इस बात की ओर ध्यान नहीं जाता कि बीता कल फिर आने वाला नहीं है। इसी प्रकार भविष्य के बारे में सोचते हैं, पर अनागत का क्या भरोसा! यदि हम अपना ध्यान केवल वर्तमान पर रखें और केवल सार्थक बातें ही सोचें तो व्यर्थ के विचारों के भार से मुक्त हो सकते हैं।

—यशपाल जैन

धर्म और समाज : एक विवेचन

मुनि सुखलाल

धर्म और समाज दो भिन्न रेखाएं हैं। धर्म का लक्ष्य मोक्ष है, समाज का लक्ष्य संसार है। धर्म व्यक्ति की चिंता करता है, समाज समष्टि की चिंता करता है। पर, इसका यह अर्थ नहीं है कि ये दोनों विरोधी हैं। बल्कि, काफी दूर तक तो धर्म और समाज समानांतर रेखा की तरह साथ-साथ ही चलते हैं। आचार्यश्री भिक्षु ने कहा है—

साध ने श्रावक रतनां री माला, एक मोटी दूजी नानी।
गुण गूंथ्या च्यारूं तीरथ रा, इबरत रह गई कानी।।

साधु और श्रावक, दोनों ही रतनों की माला के समान हैं। एक बड़ी है, दूसरी छोटी है। इनमें चारों ही तीर्थों के गुणों का गुंफन किया गया है, अवगुण किनारे रह गए हैं। इस तरह साधु और श्रावक गुणाराधना की दृष्टि से एकाभिमुख हैं। फर्क है तो केवल साधना-बल का। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आध्यात्मिक साधना के मूल बिंदु तो हैं ही, पर समाज धारणा के लिए भी एक सीमा तक इनकी आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता।

आचार्यश्री भिक्षु ने बार-बार स्पष्ट किया है कि धर्म का लक्ष्य मोक्ष है, पर इतने मात्र से वह समाज का विघटक नहीं है। यद्यपि उनके विरोधियों ने उन पर यही आरोप लगाया था कि भीखणजी असामाजिक विचार का प्रसार कर रहे हैं। वे दान-दया के विघातक हैं, मां-बाप की सेवा का निषेध करते हैं, सामाजिक व्यवस्था को तोड़ते हैं। पर, आचार्यश्री भिक्षु का यह लक्ष्य कभी नहीं रहा कि समाज विघटित हो। इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने धर्म और समाज की धारणाओं का स्पष्ट विवेचन किया था। उस समय बहुत सारे लोग संसाराभिमुखता को ही धर्माभिमुखता समझने लगे थे। बहुत सारे ही नहीं, बल्कि सभी धार्मिक उसी धारा में बह चले थें। आचार्यश्री भिक्षु ने उस धारणा का विरोध किया। उन्होंने कहा—यदि धर्म समाज-व्यवस्था का ही साधन है, तब फिर उससे मोक्ष की आशा करना व्यर्थ है।

धर्मनिष्ठ श्रावक मुक्ति चाहता है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह न करे। स्वामीजी ने कहा है—

बसतां गृहस्थावास, हिंसा हुवे जास।
आरंभ विण करिये ए, पेट किम भरीये ए।।

‘आचार्यश्री भिक्षु को समझने के लिए हमें तीन करण और तीन योग को समझना होगा। जैन धर्म में तीन करण और तीन योग का बहुत सुंदर विश्लेषण है। यह वास्तव में बहुत मनोवैज्ञानिक है। आदमी यदि एवरेस्ट की चोटी पर नहीं चढ़ सकता तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह उस दिशा में प्रयास ही नहीं करे। यह तो परले सिरे की कायरता है। आदमी में जितना सामर्थ्य है, उतना प्रयास करे। फिर यदि वह आगे नहीं बढ़ सके तो शक्ति-सामर्थ्य का अर्जन करे। रुकना पलायन नहीं है। पलायन तो उल्टी दिशा में भागना है। इस दृष्टि से तीन करण और तीन योग का बड़ा भारी महत्त्व है। तीन करण का अर्थ है—पाप करूं नहीं, पाप करवाऊं नहीं, पाप करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूं। तीन योग का अर्थ है—मन से, वचन से, काया से।’

248वां तेरापंथ स्थापना दिवस
आषाढ़ पूर्णिमा : 30 जुलाई

आचार्य भिक्षु बोधि दिवस
आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी : 28 जुलाई

गृहस्थ जीवन में आदमी से हिंसा होती ही है। उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे आगे कहते हैं—

सांतो दे धन ले जाए, अथवा लूंटे आय।
खून करे जरे ए, सूंस नहीं तरे ए।।
हणवारी बुध होय, जीव न मारूं कोय।
सें उपयोगे करी ए, एसी विगत धरी ए।।

यदि कोई व्यक्ति दीवार तोड़ कर श्रावक का धन ले जाए, कोई डाका डाल दे तो उसका सामना करने में श्रावक के व्रत का भंग नहीं होता। उसका व्रत तो इतना ही है कि वह जान-बूझ कर सजगता से किसी जीव को नहीं मारेगा।

आचार्यश्री भिक्षु ने इस विषय को बहुत विस्तार से स्पष्ट किया है। एक श्रावक की भाषा में वे कहते हैं—

थाप लाठी रो नेम, मोसूं चाले केम।
चोपद हाकणा ए, दोपद हठकणा ए।।
इम करतां जीव मराय, जीव काया जुदा थाय।
हणवा बुध नहीं धरी ए, बिना बुध मरी ए।।

हाथ या लाठी-प्रहार से मैं कैसे बच सकता हूं? मुझे पशुओं को हांकना पड़ता है, नौकरों को हटकना-डांटना पड़ता है। इन सारी प्रवृत्तियों में जीव मर सकता है, उसका जीव-काया का संबंध विच्छिन्न हो सकता है। मेरी उसे मारने की भावना नहीं है, पर बिना भावना ही उसकी मृत्यु हो सकती है।

साधु-मुनिराज को धन्य है जो हिंसा का सर्वथा परित्याग कर देते हैं। उनके मन में त्रस और स्थावर, दोनों ही प्रकार के प्राणियों के प्रति अनुकंपा है। मैं तो गृहस्थ हूं। मेरा हिंसा के बिना काम नहीं चल सकता।

स्पष्ट है कि श्रावक को अनेक प्रकार की हिंसा करनी पड़ती है। वह उससे पूर्ण रूप से विरत नहीं हो सकता। आचार्यश्री भिक्षु कहते हैं—वह उस हिंसा को हिंसा समझे। जहां तक हो सके हिंसा से उपरत होने की कोशिश करे। जहां उपरत नहीं हो सके, वहां आवश्यक है कि वह हिंसा, अहिंसा की भेद रेखा को समझे। यदि वह हिंसा-अहिंसा की भेद रेखा को नहीं समझता है तो मिथ्यात्व से ग्रसित हो जाता है। इस मिथ्यात्व के प्रति सजग करते हुए वे कहते हैं—**तिण मांहै धर्म मिथ्याती जाणे, कर्मतणे वस उधी ताणें**। हिंसा आखिर हिंसा है, उसे कभी अहिंसा नहीं कहा जा सकता। उसे अहिंसा कहने से मिथ्यात्व का स्पर्श हो सकता है।

आचार्यश्री भिक्षु ने हिंसा पर अर्थ और अनर्थ की दृष्टि से भी बहुत विचार किया है। श्रावक के आठवें व्रत का विवेचन करते हुए वे कहते हैं—'हिंसा के दो प्रकार हैं। एक अर्थ-हिंसा दूसरा अनर्थ-हिंसा। श्रावक इन दोनों को अच्छी तरह से पहचानता है। उसके लिए अर्थ-हिंसा का परित्याग कठिन है, पर वह अनर्थ-हिंसा का तो परित्याग करे।'

आवश्यकतावश या प्रमादवश उससे हिंसा हो सकती है, पर उससे उसके व्रत का भंग नहीं होता। आचार्यश्री कहते हैं—'श्रावक असंजती जीवों का जीना चाहता है, या उनके जीने से हर्षित होता है, उन्हें मारता है, मरवाता है, या उनका मरना चाहता है, ये सब यदि प्रयोजन वश करता है तो केवल पाप ही लगता है। पर, यदि बिना प्रयोजन करता है तो उसके व्रत का भंग होता है। इसलिए अर्थ-हिंसा करते समय भी उसका तन-मन कांपता है। पर, अनर्थ-हिंसा से तो उसे दृढ़तापूर्वक उपरत होना ही चाहिए।

बहुत बार यश, कीर्ति, मान, बड़प्पन, शरमा-शरमी, लोक-लज्जा या घर-परिवार की उदारता के लिए वह हिंसा करता है, वह अर्थ-दंड आवश्यक हिंसा है।

श्रावक अर्थ-अनर्थ हिंसा को अच्छी तरह से पहचाने यह आवश्यक है। उन्होंने कहा—

पाप करे छे अर्थे नें अनर्थे, त्यांने रूड़ी रीत पिछांण
अर्थ दंड तो छोडणो दोहिलो, अनर्थ दंड रा करे पचखांण

श्रावक अर्थ से या अनर्थ से जो पाप करता है वह उसे अच्छी तरह से पहचाने। अर्थ-हिंसा से मुक्त होना कठिन है, पर अनर्थ-हिंसा से तो बचना ही चाहिए।

आवश्यकतावश श्रावक घट्टी, मूसल, ऊंखल आदि रखता है। उनके बिना उसका काम नहीं चलता है, पर उन्हें भी प्रमादवश खुला नहीं रखे।

सच तो यह है कि श्रावक आवश्यकतावश भी उपरोक्त शस्त्र रखने में संकोच करता है तो बिना आवश्यकता तो रखने का सवाल ही कहां पैदा होता है? यद्यपि उपरोक्त सभी उपकरण गृहस्थ की आवश्यकता है, फिर भी चूंकि इनसे बहुत सारे स्थावर जीवों की हिंसा हो सकती है, अतः आचार्य इन्हें भी शस्त्र कहते हैं।

वास्तव में आवश्यकता और अनावश्यकता का यह विवेक ही श्रावक को व्रताव्रती की भूमिका पर स्थापित

करता है। इसका यही अर्थ होता है कि वह अपनी पारिवारिक या सामाजिक भूमिका से इन्कार नहीं हो सकता।

संसार का सारा व्यवहार राग पर चलता है। मोक्ष का सारा व्यवहार विराग-वीतराग पर चलता है, भले ही वीतरागता बहुत ऊंची स्थिति है। संसार में रहने वाले अधिकांश लोग राग से पूर्ण मुक्त नहीं हो सकते। यह ठीक है कि श्रावक का लक्ष्य मोक्ष है, पर वह संसार से टूटा नहीं है। इसीलिए वह सांसारिक कार्यों से पूर्ण विरत नहीं हो सकता। आचार्यश्री भिक्षु ने उसका विरोध नहीं किया है। उन्होंने कहा है कि गृहस्थ में रहते हुए हिंसा होती ही है। बिना हिंसा के उसका पेट भी नहीं भरता। इसीलिए श्रावक त्रस जीव की हिंसा का परिहार करता है तथा स्थावर जीव की हिंसा का परिमाण करता है। त्रस की हिंसा में भी उसके अनेक आगार हैं। कोई चोर उसके घर सांता लगाए, कोई लुटेरा उसे लूटने के लिए आए या मारने के लिए आए तो वह अपना बचाव ही नहीं करता है, अपितु प्रति-प्रहार भी करता है। साधु ऐसा नहीं कर सकता। वह हर प्रहार को धैर्य से सह लेगा, पर प्रति-प्रहार नहीं करेगा। यह श्रावक और साधु का भूमिका भेद है।

श्रावक खेती का धंधा करता है। वह गाड़ी पर बैठकर खेत जाता है, हल जोतता है, सूड और निनाण करता है। उसमें बहुत सारे जीवों की हिंसा होती है। वह गृहस्थावास में ऐसा फंसा हुआ है कि उससे बच नहीं सकता। फिर भी वह मारने की नीयत से किसी जीव को नहीं मारता। यह श्रावक और साधु की भूमिका का भेद है।

धर्मनिष्ठ श्रावक मुक्ति चाहता है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह न करे। वह अपने गृहस्थ जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए अनेक प्रकार की हिंसा-व्यवस्था से जुड़ता है। वह समाज निरपेक्ष धर्म की उपासना नहीं कर सकता। समाज में रहते हुए व्यक्ति को अपनी चिकित्सा व्यवस्था को भी सुदृढ़ करना पड़ता है। न केवल अपनी ही, अपितु अपने परिवार तथा समाज की चिकित्सा व्यवस्था के लिए भी उसे सजग रहना पड़ता है। उसके लिए अर्थ-सहयोग से लेकर सभी तरह का सहयोग करना पड़ता है। यह सारा रागात्मक संबंध है। पर, श्रावक के सारे रागात्मक संबंध छूटे भी तो कहां है? इस अर्थ में यदि वह किसी दूसरे प्राणी को बचाता है तो आचार्यश्री भिक्षु उसका हाथ नहीं पकड़ते। उनका आग्रह इस बात पर है कि अपेक्षा दृष्टि को समझा जाए। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने नयवाद के परिप्रेक्ष्य में इसी बात को बहुत ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है—'समुदाय ही सत्य है, यह व्यक्ति का तिरस्कार है। यह ऐकांतिक समुदायवादी नीति संग्रह-नयाभास है। व्यक्ति ही सत्य है—यह समुदाय का तिरस्कार है। यह ऐकांतिक व्यक्तिवादी नीति व्यवहार नयाभास है। जब तक हम अपेक्षा भेद को नहीं समझ लेते, तब तक सत्य को नहीं पहचान सकते।'

आचार्यश्री भिक्षु का आग्रह है कि सत्य को पहचानो। सत्य को पहचानने के बाद उस पर आचरण करने की बात सामने आती है। इसी आधार पर तो जैन परंपरा में साधु और श्रावक की दो भिन्न भूमिकाओं का निर्माण हुआ है। साधु व्यक्तिवादी दृष्टि है, श्रावक समुदायवादी दृष्टि है। अपने-अपने स्थानों पर दोनों का मूल्य है। पर जब वे एक-दूसरे को काटने लगती हैं, तो असत्य बन जाती हैं।

जे द्रव्यादिक राषीया, लेहनी इविरत जांण,
अर्थ डंड छूटे नहीं, अनर्थ डंड पचखांण,

श्रावक ने जिन-जिन द्रव्यों का अपवाद रखा है, उसकी उसे अव्रत लगती है। यह अर्थ दंड है। श्रावक उसे नहीं छोड़ सकता। वह अनर्थ दंड का प्रत्याख्यान करता है—

पांच अणुव्रत धारतां, मोटी बांधी पाल
छोटी री इविरत रही, ते पाप आवै दगचाल

पांच अणुव्रत को धारण करते हुए उसने बड़ी पाल बांध ली है। जो छोटी अव्रत अभी तक खुली हुई है, उससे पाप का निरंतर-दगचाल आगमन होता रहता है।

बहुत बार आचार्यश्री भिक्षु को निरपेक्ष दृष्टि से समझ लिया जाता है। शब्द एक सापेक्ष सत्य है। उसे जब निरपेक्ष समझ लिया जाता है तो उलझन पैदा होती है। आचार्यश्री भिक्षु ने परिग्रह को वर्ज्य कहा है, यह एक साधु की भूमिका की बात है। साधु किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं रख सकता। पर, यदि श्रावक किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखे तो उसका काम नहीं चल सकता। अपरिग्रह अणुव्रत में इसी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—

त्यांरो श्रावक कियो परमांण, त्याग्या त्यांरी विरत पिछांण
बाकी इविरत में राखिया ए, सूतर छै साखिया ए।

श्रावक अपने परिग्रह का परिमाण करता है। उसने जितना त्याग किया है, उतना व्रत में है। जितना खुला रखा है, वह अव्रत में है।

यह परिग्रह की स्वीकृति नहीं है। पर, श्रावक की भूमिका पर जीते हुए कोई व्यक्ति परिग्रह से पूर्ण मुक्त नहीं हो सकता। इसीलिए वह स्वयं परिग्रह रखता है तथा दूसरों से उसका आदान-प्रदान भी करता है। दस दानों की व्यवस्था इसी आधार पर खड़ी हुई है—आचार्य ने कहा है—

दस दान भगवंत भाखिया, सूत्र ठाणांग मांय
गुण निपन्न नाम छै तेहना, भोला ने खबर न कांय

भगवान महावीर ने स्थानांग सूत्र में दस दानों का वर्णन किया है। इसके गुण निष्पन्न नाम हैं, भोले आदमी इसे नहीं जानते।

श्रावक यह जानता है कि मोक्ष का मार्ग तो केवल धर्मदान ही है।

सूतर अर्थ सीखाय ए, सुध मारग आणै ठाय ए।
आपे समकत चारित्र एह ए, धर्म दान छै आठमो तेह ए।।

पर, फिर भी अपनी भूमिका में रहते हुए उसे वे सारे कार्य करने पड़ते हैं। इसलिए आचार्यश्री भिक्षु कहते हैं—

वीर नीं आग्या में एक ए, आग्या बारै दान अनेक ए।
एतो संसार नो उपगार ए, अरिहंत नीं आज्ञा बार ए।।

यह संसार का उपकार है, अरिहंत भगवान इसकी आज्ञा नहीं देते।

धर्म अधर्म दान छै दोय ए, पिण मिश्र म जाणो कोय ए

दान में या तो धर्म है या अधर्म है। एक ही दान में धर्म और अधर्म, दोनों नहीं होते।

वास्तव में आचार्य यहां मिश्रधर्म की प्ररूपणा का खंडन करते हैं। देने को तो श्रावक को भी अधर्म दान देना पड़ता है, पर वह उसे धर्मदान नहीं मानता, न ही उसमें मिश्रधर्म मानता है।

आचार्यश्री भिक्षु को समझने के लिए हमें तीन करण और तीन योग को समझना होगा। जैन धर्म में तीन करण और तीन योग का बहुत सुंदर विश्लेषण है। यह वास्तव में बहुत मनोवैज्ञानिक है। आदमी यदि एवरेस्ट की चोटी पर नहीं चढ़ सकता तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह उस दिशा में प्रयास ही नहीं करे। यह तो परले सिरे की कायरता है। आदमी में जितना सामर्थ्य है, उतना प्रयास करे। फिर यदि वह आगे नहीं बढ़ सके तो शक्ति-सामर्थ्य का अर्जन करे। रुकना पलायन नहीं है। पलायन तो उल्टी दिशा में भागना है। इस दृष्टि से तीन करण और तीन योग का बड़ा भारी महत्त्व है। तीन करण का अर्थ है—पाप करूं नहीं, पाप करवाऊं नहीं, पाप करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूं। तीन योग का अर्थ है—मन से, वचन से, काया से। इस प्रकार विकल्प-भंग पद्धति से 49 भंग होते हैं। कम से कम एक करण एक योग का एक विकल्प रुकता है तो उत्कृष्ट रूप से तीन करण तीन योग के 49 विकल्प रुकते हैं। एक विकल्प का रुकना भी अहिंसा है तथा समस्त विकल्पों का रुकना भी अहिंसा है। एक विकल्प का रुकना अल्पतम अहिंसा है तो समस्त विकल्पों का रुकना पूर्णतया अहिंसा है। साधु का त्याग तीन करण तीन योग से होता है, श्रावक का त्याग एक करण एक योग से लेकर तीन करण तीन योग तक का हो सकता है। वह जितना त्याग करता है, उतना व्रत हो जाता है और जो त्याग नहीं करता है, वह अव्रत रह जाता है। आचार्यश्री भिक्षु ने कहा है—

तीनां करणां लागे पाप, तिण सूं दुख भुगते आप।
त्यांने त्याग्यां विरत हुसी ए, जब जीव होसी खुसी ए।।

तीन करण और तीन योग से जीव पाप का बंध कर दुख पाता है। उनको त्यागने से व्रत होता है और जीव जीवनपर्यंत सुखी हो जाता है।

पर, जो पूर्ण विरति नहीं हो सकता, वह अपने सामर्थ्य के अनुसार व्रत तो ग्रहण कर ही सकता है। यह श्रावक का रास्ता है। श्रावक जितनी निःसंगता प्राप्त करता है, उतना पापागम का द्वार तो रुक ही जाता है। समूची बारह व्रत की व्यवस्था इसका सुंदर उदाहरण है। इसीलिए वह कृतार्थता की महत्त्वपूर्ण अनुभूति है।

व्रताव्रत की चौपाई में श्रावक के लिए अनेक मर्यादाओं की व्यवस्थाओं का विश्लेषण आचार्यश्री भिक्षु ने किया है। एक श्रावक कहता है—मैं एक कृषक हूं, अतः कृषि से तो नहीं बच सकता। पर नियत आगार के उपरांत तो कृषि करने, कराने तथा अनुमोदन करने का मन, वचन तथा काया से त्याग कर सकता हूं। वस्तुतः यह एक बहुत ही सार्थक प्रक्रिया है। इसी प्रकार श्रावक

अपने पारिवारिक-सामाजिक उपयोग के लिए तथा धर्मोपासना के लिए यदि सभा-संस्थाओं, भवनों आदि का निर्माण करता है तो उसमें आचार्यश्री भिक्षु कभी बाधक नहीं बनते। वास्तव में उनका विरोध उसमें धर्म, मिश्रधर्म या पुण्य का बंध समझने-स्वीकार करने में है। निश्चय ही ये सारे निर्माण सावद्य सागारिक त्याग हैं। अतः वह अपनी पूंजी से उनका निर्माण करवाता है, तो इसमें स्वामीजी का कोई विरोध नहीं है। इसलिए उसे—**संसार तणो उपकार ए**—यह संसार का उपकार, संसार का मार्ग कहा गया है। एक आदमी दूसरे का संसार का उपकार करता है, तो दूसरा भी उसका उपकार कर देता है।

आचार्यश्री भिक्षु ने कहा—

सुग्रीव सूं उपगार कीयों राम लछमण,
जब सुग्रीव हुवों त्यांरो सखाई।
सीता री खबर आंणे रावण ने मरायों,
तिण पाछों उपगार कीयों भीड आई।।

राग की यह परंपरा केवल इस जन्म में ही नहीं है, वह जन्म-जन्मांतर तक जाती है। आचार्यश्री भिक्षु ने इसी बात को लक्ष्य कर कहा—

नाग नागणी हुंता बलता लकडा में,
त्यांने पारसनाथ जी काढ्या कहे छै बार।
अगन में बलता ने राख्या जीवता,
पांणी नें अगनादिक रा जीवां ने मार।।
पारसनाथ जी घर छोडे काउसग्ग कीधों जब,
कमठ उपसर्ग कर बरषायो पांणी।
जब पदमावती हेठें कीयों सिंघासण,
धरिणंद्र छत्र कीयों सिर आंणी।।

इस परंपरा को भविष्य से जोड़ते हुए उन्होंने आगे कहा है—

कोई दुष्टी जीव जूं नें मारतो थो,
तिणनें वरजे ने जूं ने वचाई।
ते जूं रो जीव मीनष हुवों जब,
इणरों कजीयों इण पिण दीयो मिटाई।।
संसार नों उपगार करें जिण सेती,
कदा ते पिण पाछों करें उपगार।
एतो उपगार एकीका जीवां सूं,
कीधा छै अनंत अनंती वार।।

आदमी जब राग करता है तो राग का बंधन होता है।

जीव नें जीवां बचावें तिण सूं,
बंध जाअें तिणरों राग सनेह।
जो पर भव में ऊ आय मिलें तो,
देखत पांण जागे तिण सूं नेह।।

इसी तरह जब आदमी द्वेष करता है तो उसके साथ द्वेष परंपरा का संबंध जुड़ जाता है—

जीव नें जीव मारें छें तिण सूं,
बंध जाअें तिण सूं घेष वशेख।
ते पर भव में उ आय मिलें तो,
देखत पांण जागें तिण सूं घेष।।

सास-बहू के चौढ़ालिए में आचार्यश्री भिक्षु ने इसे बहुत विस्तार से समझाया है।

यह सारा सांसारिक व्यवहार है, इसे आध्यात्मिकता नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग श्रावक के इस आवश्यक कार्य को भी धर्म कह देते हैं। उसका विरोध करते हुए आचार्यश्री भिक्षु ने कहा—संसार के उपकार में धर्म वे ही व्यक्ति बताते हैं, जो मूर्च्छा तथा मिथ्यात्व से ग्रसित हैं। वे जैन धर्म को जाने बिना मनमानी प्ररूपणा करते हैं।

आचार्यश्री भिक्षु एक महान क्रांतिकारी पुरुष थे। यद्यपि उनका पूरा पौरुष-पराक्रम भगवान महावीर के अनुगमन में खपता है। इस अर्थ में वे एक सच्चे अनुयायी हैं, पर सच्चा नेता भी वही हो सकता है जो सच्चा अनुयायी हो। भगवान महावीर से अपने-आप को जोड़ने में उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ा था। महावीर के नाम पर परंपराओं की कुछ ऐसी काई जम गई थी जो महावीर के उपदेश को गहरे में नहीं उतरने देती थी। आचार्यश्री भिक्षु ने उस काई को हटाने में कड़ा संघर्ष किया। यद्यपि परंपरा का भी अपना एक मूल्य होता है। हर परंपरा प्रारंभ में कुछ विशेष दृष्टि से ही प्रारंभ होती है। पर, धीरे-धीरे उस चेतना पर रूढ़ता का एक संस्कार जम जाता है। आचार्यश्री भिक्षु ने उस रूढ़ता को मिटा कर धर्म के वास्तविक रूप को उजागर किया था।

उनकी दृष्टि के अनुसार श्रावक अपने सामाजिक दायित्व के नाते किन्हीं ट्रस्टों की स्थापना करता है तो उसमें उसका श्रावकपन खंडित नहीं होता। दसदान की ढाल में आचार्यश्री ने कहा है—**छोड़ाव गर्थ दे ताम ए,**

संग्रह दान छै तिण रो नाम ए—वास्तव में ट्रस्ट संग्रहदान का ही एक रूप है। यह ठीक है कि यह अभयदान और ज्ञानदान की तरह निरपवाद नहीं है। पर, एक श्रावक की भूमिका पर रहने वाला व्यक्ति इससे बच नहीं सकता।

इसी तरह अनुकंपा-दान चिकित्सा-व्यवस्था का सूचक है। उसमें जो अर्थ का नियोजन होता है, वह धर्म तो नहीं हो सकता, पर उसे कर्तव्य की सीमा से मुक्त नहीं किया जा सकता।

परिग्रह का अर्थ केवल पदार्थ ही नहीं है। आचार्यश्री भिक्षु ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है—

नव जात रो परिग्रह नांही, विचार करो मन मांहि।
मूर्च्छा परिग्रहो ए, ओ मारग नरक रो ए।।

वास्तव में परिग्रह का अर्थ मूर्च्छा है। यही कारण है कि पदार्थ कम होने पर भी एक व्यक्ति महापरिग्रही बन जाता है तथा पदार्थ बहुत होने पर भी एक व्यक्ति अल्प परिग्रही बन जाता है। भरत चक्रवर्ती तथा उनके आठ उत्तराधिकारी सम्राटों का उदाहरण इसी तथ्य को उजागर करता है। संपूर्ण भारत-खंड का अधिपति होने के बावजूद भी भरत की साम्राज्य के प्रति तीव्र मूर्च्छा नहीं थी। इसीलिए उसी भव में वे पूर्ण अपरिग्रही बन सके। इसी प्रकार श्रावक में भी जब पदार्थ के प्रति तीव्र मूर्च्छा का भाव नहीं होता है, तभी वह श्रावक बनता है, अन्यथा वह श्रावक बन ही नहीं सकता। यदि ऐसा व्यक्ति उस भव में साधु नहीं भी बनता है, तो भी उसकी तीन भवों में मुक्ति हो सकती है। यह परिग्रह के प्रति गाढ़ अनासक्ति का ही परिणाम है।

जब भी आदमी उस आसक्ति से छूटता है, उसमें विसर्जन का भाव घटित होता है। विसर्जन का अर्थ किसी को अर्थ देना नहीं है, अपितु उसकी आसक्ति से मुक्त होना है। किसी को अर्थ देना यह एक सामाजिक व्यवस्था है। इसे धर्म नहीं कहा जा सकता, पर क्या उसका सामाजिक महत्त्व भी नहीं माना जा सकता?

बहुत बार अपने-आप को बचाने के लिए भी व्यक्ति आचार्यश्री भिक्षु की ओट ले लेता है। एक व्यक्ति के पास कुछ लोग चंदा लेने के लिए गए। वह बोला—चंदा देने में तो पाप होता है। अतः मैं यह पाप का कार्य नहीं करूंगा।

सामने वाले व्यक्ति ने कहा—चंदा देने में यदि पाप है तो पैसा संग्रह करने में धर्म कहां से होगा। चंदा देना पाप है तो पैसा कमाना भी पाप है। गृहस्थ की भूमिका पर जीने वाला व्यक्ति स्वयं भी पैसा अर्जित करता है तथा अपने सामाजिक दायित्व के नाते समय पर दूसरों का भी सहयोग करता है। बहुत सारे लोग इसे धर्म कह देते हैं। आचार्यश्री भिक्षु का उनसे यहां मौलिक मतभेद है। निःसंदेह पैसे का उपयोग धर्म नहीं है, जो लोग उसके उपयोग में धर्म मानते हैं, उनका आचार्यश्री भिक्षु ने तीव्र प्रतिरोध किया है। पर, अपनी सामाजिक उपयोगिता से यदि कोई व्यक्ति 'ट्रस्ट' बनाता है तो वह एक प्रकार से संग्रहदान का ही प्रतिरूप है। समाज में उसकी आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आचार्यश्री भिक्षु ने स्थानक का विरोध किया था। इसमें कोई शक नहीं है कि स्थानक के निर्माण में हिंसा होती है। आचार्यश्री भिक्षु इसी दृष्टि से उसका विरोध करते हैं। पर, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे श्रावकों को धर्मोपासना के लिए किसी स्थान का निषेध करते हैं। श्रावक अपनी धर्मोपासना के लिए हमेशा स्थान का निर्माण करते रहे हैं। महावीर के जमाने में भी श्रावक की धर्मोपासना के लिए पौषधशाला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। भगवान महावीर ने उसका कभी निषेध नहीं किया। आचार्यश्री भिक्षु ने स्थानक का जो विरोध किया, उसका आशय यह था कि साधु लोग स्थानकों के निर्माण में न केवल रुचि ही लेने लगे थे, अपितु उनके निर्माण में स्पष्ट आदेश-निर्देश भी होने लगा था तथा वे अपने लिए बनाए गए स्थानकों में निवास भी करने लगे थे, इसीलिए जैन परंपरा में उनके विरोध में एक क्रांति हुई। आचार्यश्री भिक्षु को तेरापंथ के रूप में क्रांति करनी पड़ी। तेरापंथ का मानना है कि स्थानक के लिए निर्माण में अहिंसा नहीं है। पर, यह साधु की बात है। श्रावक यदि ऐसा करे तो उसका काम नहीं चल सकता। अपने निवास के लिए उसे घर का निर्माण करना ही पड़ता है। वैसे ही सामाजिक कार्यों के लिए भी मकान बनाना पड़ता है। धार्मिक उपासना के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ती है। अलबत्ता इसे धर्म नहीं कहा जा सकता। जो लोग हिंसा-अहिंसा के भेद-ज्ञान को नहीं समझते तथा हिंसा को ही अहिंसा समझ लेते हैं, आचार्यश्री भिक्षु का यहीं पर मतभेद था। हिंसा करना एक बात है और उसे अहिंसा समझना दूसरी बात। आचार्यश्री भिक्षु साधक के मन में इसी बोधि-बीज का वपन करना चाहते हैं। ❖

स्वास्थ्य चेतना के संवाहक

साध्वी आरोग्यश्री

सत्य-शोध के अनुसंधाता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी भगवान महावीर की आध्यात्मिक परंपरा के प्रभावक आचार्यों में हैं। अपनी विलक्षण प्रज्ञा व अतींद्रिय ज्ञान से अनेक आध्यात्मिक उपलब्धियां आपने हासिल की हैं। आपके बहुआयामी व्यक्तित्व और व्यापक कर्तृत्व का कथन या लेखन सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं है। भीड़ में अकेले की साधना के रूप में आपने अध्यात्म को अपने जीवन में प्रायोगिक तौर पर जीया है और ऐसे अनेक कार्य किए हैं जिनकी दिशाएं, गति और लक्ष्य अनंतोन्मुखी है। आप अनेकांत के प्रयोक्ता हैं। जीवन की हर समस्या को अनेकांत के आधार पर सुलझाने की क्षमता रखते हैं। आपकी यौक्तिक दलीलें सब विसंगतियों में संगति स्थापित कर देती हैं। आचार्य भिक्षु, श्रीमज्जयाचार्य और आचार्य तुलसी के आप सफल भाष्यकार हैं। तीन-तीन युगपुरुषों के चिंतन व दर्शन को युगीन परिवेश में प्रस्तुत कर आपने अध्यात्म को विज्ञान से जोड़ा है। इसीलिए आपका आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व है।

जब हम आचार्य महाप्रज्ञ के समग्र विचारों की परिक्रमा करते हैं, उनका श्रवण करते हैं या उनके साहित्य का पठन करते हैं तो एक कुशल मनोचिकित्सक, एक आयुर्वेदाचार्य और शरीर-शास्त्रवेत्ता के रूप में भी वे प्रकट होते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जब स्वास्थ्य-शास्त्र के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं तो वर्तमान चिकित्सा जगत के अनुपूरक के रूप में प्रस्तुत होते नजर आते हैं। प्रेक्षा-ध्यान के शिविरों में योग्य व विशेषज्ञ चिकित्सक ऐसा ही अनुभव करते हैं। प्रेक्षाध्यान के सिद्धांतों और प्रयोगों का वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में यदि प्रयोग किया जाए तो कई तरह के स्वाभाविक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार स्वास्थ्य का जितना महत्त्व है उससे कहीं ज्यादा स्वास्थ्य चेतना का महत्त्व है। जन-जन में स्वास्थ्य की चेतना को जाग्रत करने के लिए आपने अपनी अंतःप्रज्ञा से स्वास्थ्य से संबंधित साहित्य का समयोचित सृजन किया है। यथा—'पहला सुख निरोगी काया', 'तुम स्वस्थ रह सकते हो', 'महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र', 'आमंत्रण आरोग्य को' आदि ग्रंथ दृष्टव्य हैं। अपनी साधना-कालीन

'आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार स्वास्थ्य का जितना महत्त्व है उससे कहीं ज्यादा स्वास्थ्य चेतना का महत्त्व है। जन-जन में स्वास्थ्य की चेतना को जाग्रत करने के लिए आपने अपनी अंतःप्रज्ञा से स्वास्थ्य से संबंधित साहित्य का समयोचित सृजन किया है। यथा—'पहला सुख निरोगी काया', 'तुम स्वस्थ रह सकते हो', 'महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र', 'आमंत्रण आरोग्य को' आदि ग्रंथ दृष्टव्य हैं। अपनी साधना-कालीन प्रयोगात्मक अनुभूतियों के द्वारा आपने कुछ ऐसे स्वास्थ्य सूत्र खोज लिए हैं, कुछ ऐसे प्रयोग किए हैं—जिनको वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में अपनाकर व्यक्ति शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रूप से स्वयं को स्वस्थ रख सकता है।'

जन्मोत्सव
आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी : 12 जुलाई
विनम्र अभिवंदना

प्रयोगात्मक अनुभूतियों के द्वारा आपने कुछ ऐसे स्वास्थ्य सूत्र खोज लिए हैं, कुछ ऐसे प्रयोग किए हैं—जिनको वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में अपनाकर व्यक्ति शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रूप से स्वयं को स्वस्थ रख सकता है।

कुशल मनोचिकित्सक

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी एक कुशल मनोचिकित्सक हैं। मन के विशद स्वरूप को शरीर-शास्त्रीय, मनोविज्ञान व वर्तमान परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में जिस प्रकार से उंकेरा गया है, वह विरल है। 'चित्त और मन' नामक पुस्तक में इसकी विशद व्याख्या उपलब्ध है। अपने अंतःकरण के पवित्र भावों से मन के गहरे स्वरूप का अनुभव कर, उसके विविध क्रियाकलापों का ज्ञान कर, उसकी रुग्ण दशा को आपने 'किसने कहा मन चंचल है'—पुस्तक में उजागर किया है। मन का स्वरूप, मन की अवस्थाएं, मन के प्रकार, मन के कार्य, मन और चित्त विषय पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने जो लिखा है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'मैं : मेरा मन : मेरी शांति'—पुस्तक स्वस्थ मन का एक प्रकल्प है। आचार्यप्रवर ने मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए सात सूत्रों को प्रस्तुत किया है—

1. प्राणशक्ति का संतुलन, 2. सम्यक् श्वास, 3. सम्यक् आहार, 4. क्रोध का उपशमन, 5. तनाव का विसर्जन, 6. आत्म निरीक्षण और 7. जीवन-शैली में बदलाव। इन सूत्रों के अलावा आपके साहित्य में मानसिक स्वास्थ्य के अन्य महत्त्वपूर्ण सूत्र भी निर्दिष्ट हैं। जैसे— ● अपने आपको जानना ● परिणामों की स्वीकृति ● सत्य के प्रति समर्पण ● अपने आपको यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना ● चैतन्य केंद्रों की सक्रियता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का साहित्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है।

शारीरिक स्वास्थ्यवेत्ता

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने किसी शिक्षण संस्थान में जाकर एनोटॉमी, फिजियोलॉजी, बॉयोलॉजी या सोशियोलॉजी आदि विद्या-शाखाओं का कक्षा-कक्षीय अध्ययन कभी नहीं किया। फिर भी 'महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र' पढ़कर ऐसा लगता है कि आप शारीरिक स्वास्थ्य के पूर्ण वेत्ता हैं। इस पुस्तक में आपने स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण सूत्र दिए हैं। भगवान महावीर की स्वास्थ्य संबंधी अवधारणाओं की शरीर-शास्त्रीय दृष्टि से तुलना कर उसे नवीन रूप में व्याख्यायित किया है। ऐसे प्रायोगिक समाधान दिए हैं जो चिकित्सा जगत के लिए महत्त्वपूर्ण अवदान माने जा रहे हैं।

आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद का चिकित्सा जगत में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ को चरक और सुश्रुत संहिता का सांगोपांग ज्ञान है। आयुर्वेद का कोई ऐसा ग्रंथ शायद ही हो, जिस पर आपकी दृष्टि न पड़ी हो। आप न केवल इसके ज्ञाता हैं, बल्कि प्रयोक्ता भी हैं। अपने दैनन्दिन जीवन में आयुर्वेदिक औषधियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हैं। अपने पद-विहार और अविराम यात्रा के दौरान देखा गया है कि छोटे-छोटे गांवों में अन्य चिकित्सा विधियां सुलभ नहीं होतीं, तब आप अपने अनुभव और ज्ञान के बल पर एक अनुभवी वैद्य बन जाते हैं और साधु-साध्वियों के तद्‌जनित रोगों की रोकथाम के बारे में निरंतर जागरूक रहते हैं और उचित जानकारी देते रहते हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण व उपयोगी नुस्खों की जानकारी देते समय आप में छिपा एक कुशल आयुर्वेदाचार्य प्रकट होता नजर आता है।

वस्तुतः सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय की भावना से अभिप्रेरित होकर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने संपूर्ण मानव जाति के लिए जो कार्य किया है और कर रहे हैं—वह विलक्षण है। आपका संपूर्ण 'प्रेक्षा' साहित्य एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में पथ-दर्शन का काम कर रहा है। शरीर को निरोग बनाए रखने के लिए आपके प्रयोग वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में सर्व स्वीकार्य हैं और मानव-कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होकर स्वास्थ्य के संदर्भ में आपके विचारों से जन-जन में स्वास्थ्य की चेतना का जागरण हो रहा है। ❖

दार्शनिक होने का अर्थ केवल सूक्ष्म विचारक होना नहीं है, या केवल किसी दर्शन-प्रणाली को चला देना नहीं है, बल्कि यह है कि हम ज्ञान के ऐसे प्रेमी बन जाएं कि उसके इशारों पर चलते हुए विश्वास, सादगी, स्वतंत्रता और उदारता का जीवन व्यतीत करने लगें। —**थोरो**

रोबोट ने की आत्महत्या

❀ इरा सक्सेना

रोशनी से जगमगाता साइनबोर्ड। बोर्ड पर लिखा था—सुपर रोबोट प्लाजा। बोर्ड को पढ़ते ही प्रेम चोपड़ा के चेहरे पर चालाकी भरी मुस्कराहट आ गई। सुबह से ही ब्रीफकेस में ढेर सारा रुपया लिए वह बाजार में घूम रहा था। यह रुपया उसकी मेहनत की कमाई का नहीं था, लूट में मिला उसका हिस्सा था। वास्तव में प्रेम चोपड़ा लुटेरों के गिरोह में शामिल एक लुटेरा था। उसके गिरोह ने दो-तीन दिन पहले ही एक बैंक को लूटा था। लाखों रुपये की लूट थी यह। उसी लूट में से अपना हिस्सा लेकर वह खरीदारी करने निकला था। वह चाहता था कि इन रुपयों से वह कोई काम की चीज खरीदे। सुपर रोबोट की दुकान देखते ही उसने सोचा कि क्यों न वह एक रोबोट ही खरीद ले।

रोबोटों की इस भव्य दुकान में घुसते ही सेल्समैन ने उसका अभिवादन करते हुए कहा—'आइए साहब, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?'

'मैं एक रोबोट खरीदना चाहता हूं'—उसने जेब से रूमाल निकालकर अपना पसीना पोंछते हुए कहा—'ऐसा रोबोट जो घरेलू कामों में मेरी सहायता कर सके।'

'आइए, इधर आइए।'—कहता हुआ सेल्समैन उसे एक बड़े हॉल में ले गया। हॉल खूब सजा-धजा था। उसमें कीमती कालीन बिछे हुए थे और चारों तरफ इतने ज्यादा बल्ब जल रहे थे कि उनकी रोशनी से आंखें चुंधिया जाती थीं।

सेल्समैन ने दाहिनी तरफ खड़े बहुत से रोबोट्स की तरफ इशारा करते हुए कहा—'देखिए साहब, ये सभी रोबोट घरेलू काम में सहायता करने वाले रोबोट हैं। ये सभी बहुत अच्छे रोबोट हैं। हमारी कंपनी के बने इन रोबोट्स से बढ़िया रोबोट आपको और कहीं नहीं मिलेंगे। ये रोबोट घर की सफाई कर सकते हैं। बाग-बगीचे की देखभाल कर

'रोबोट चुप था, उसके भीतर से 'किर्र-किर्र' की आवाज आ रही थी, फिर धीमी-धीमी आवाज में उसने बताया—'घर का सारा काम-काज, सफाई करना, लॉन की घास काटना, पेड़-पौधों की देखभाल करना, रसोई का काम करना, कपड़े धोना और बाजार से सामान लाना....इसके अलावा मालिक का जो भी आदेश हो।'

वकील ने रोबोट से फिर पूछा—'पिछले एक हफ्ते में तुमने क्या-क्या काम किए? अपनी मेमोरी को देखकर बताओ।''

बालकथा

सकते हैं। नल, बिजली की मरम्मत कर सकते हैं। भारी से भारी सामान उठा सकते हैं। बाजार से सामान, साग-सब्जी भी खरीदकर ला सकते हैं। लेटर-बॉक्स में चिट्ठी डालकर आ सकते हैं। यह समझ लीजिए कि आप जो भी चाहें, वे सभी काम यह रोबोट कर सकते हैं। इसके अलावा उद्योगों में काम करने और भवन निर्माण के काम में सहायता आदि विशेष कार्यों में निपुण रोबोट भी हमारी कंपनी बनाती है।'—सेल्समैन लगातार अपने रोबोटों की तारीफ के पुल बांधे जा रहा था।

प्रेम चोपड़ा ने देखा कि सभी रोबोट लगभग पांच फुट ऊंचे थे। वे सभी चांदी के रंग के थे। उनके सिर पर नीले और हरे रंग के बल्ब लगे हुए थे। कुछ रोबोट अपने हाथ-पांव ऐसे हिला रहे थे मानो वे काम करने का अभ्यास कर रहे हों।

वह अभी इधर-उधर देख ही रहा था कि एक रोबोट उसके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—'नमस्कार, सुपर रोबोट प्लाजा में आपका स्वागत है!'

प्रेम चोपड़ा ने आश्चर्य से सेल्समैन की तरफ देखा। उसने देखा कि सेल्समैन के हाथ में रिमोट-कंट्रोल था, जिसके जरिए उसने रोबोट को ऐसा बोलने का आदेश दिया था।

'साहब, इस रोबोट का नाम 'रामसिंह 070' है। यह सबसे बढ़िया और नवीनतम रोबोट है। रिमोट-कंट्रोल के सहारे आप इससे आधा किलोमीटर के दायरे में काम ले सकते हैं। यह सुपर बाजार से सामान भी इकट्ठा कर सकता है। और, सबसे खास बात यह है कि इस रोबोट के अंदर एक ऐसा गुप्त स्थान भी है, जिसमें यह आपका जरूरी व कीमती सामान छिपाकर रख सकता है।'

सेल्समैन की यह बात सुनते ही उसकी आंखों में चमक आ गई और उसके मुंह से अचानक ही निकल पड़ा—'तब तो यह मेरे लिए बहुत काम का रोबोट है। ठीक है, मुझे यही रोबोट दे दीजिए!'

'ठीक है साहब! आइए, ऑफिस में चलिए। मैं इससे काम लेने की सारी विधियां आपको समझा दूं।'

प्रेम चोपड़ा ने जल्दी ही सारी बातों को समझकर बिल बनवाया, कीमत चुकाई और रोबोट रामसिंह 070 को खरीद लिया। फिर एक कांट्रेक्ट पर हस्ताक्षर किए कि वह 'रोबोट का दुरुपयोग नहीं करेगा'।

प्रेम चोपड़ा घर आकर सोचने लगा—'जब यह बाजार से खाने-पीने का सामान उठा सकता है तो किसी जौहरी की दुकान से हीरे-जवाहरात भी उठा सकता है और उन्हें अपने गुप्त स्थान में छिपा भी सकता है! इस तरह तो किसी को पता भी नहीं चलेगा। फिर अगर कोई इस पर चुराने का शक करे भी और इसकी तलाशी ले, तब भी कुछ नहीं मिलेगा और यह कभी पकड़ा भी नहीं जाएगा।'

अगले दिन प्रेम चोपड़ा बाजार गया। वह भीड़ भरे बाजार से गुजर रहा था। उसके पीछे-पीछे उसका रोबोट रामसिंह 070 चल रहा था। बाजार में रोबोट विभिन्न दुकानों पर खरीदारी करते, सामान उठाकर ले जाते दिखाई दे रहे थे। सड़क के बाएं मोड़ पर 'गोपाल ज्वैलर्स' की दुकान से कुछ दूर आगे जाकर प्रेम चोपड़ा खड़ा हो गया। गोपाल ज्वैलर्स शहर की सबसे बड़ी दुकान थी। दुकान के शो-केस में कीमती जेवर सजे थे। दुकान पर जेवरात की खरीदारी के लिए ग्राहकों की भीड़ थी। प्रेम चोपड़ा ने रिमोट-कंट्रोल के जरिए रामसिंह 070 को आदेश दिया—'रामसिंह 070, अपने सामने गोपाल ज्वैलर्स की दुकान के अंदर जाओ और लोगों की नजर बचाकर हीरों का हार उठाकर अपने गुप्त खाने में छिपा लो।'—परंतु, रामसिंह 070 चुपचाप खड़ा रहा। जब प्रेम चोपड़ा ने देखा कि रामसिंह 070 चुपचाप खड़ा है तो उसने अपना आदेश दोहराया—'रामसिंह 070, सामने गोपाल ज्वैलर्स की दुकान के अंदर जाओ और हीरों का हार उठाकर अपने गुप्त खाने में रख लो, अगर तुम मेरा आदेश नहीं मानोगे तो मैं तुम्हारे सारे फ्यूज उड़ा दूंगा।'

रामसिंह 070 क्या करता! उसे तो अपने मालिक का आदेश पालन करने के लिए 'प्रोग्राम' किया गया था। वह दुकान में घुस गया। धीरे-धीरे चलकर वह काउंटर के पास पहुंचा। काउंटर पर खड़ा सेल्समैन

ग्राहकों को हार दिखा रहा था। काउंटर पर हीरों के कई हार रखे हुए थे। सबकी नजर बचाकर रामसिंह 070 ने एक हार उठा लिया और उसे फौरन अपने गुप्त खाने में छिपा लिया। किसी को कुछ पता नहीं चल सका। दूर खड़ा प्रेम चोपड़ा दूरबीन लगाकर सब-कुछ देख रहा था। जैसे ही उसने देखा कि रामसिंह 070 अपना काम पूरा कर दुकान से बाहर निकल आया है तो उसने खुश होकर सीटी बजाना शुरू कर दिया। जब रामसिंह 070 उसके पास आ गया तो वह उसे लेकर घर आ गया।

अब उसका यह रोज का काम हो गया। वह रामसिंह 070 से कभी किसी पुराने, लेकिन कीमती सामान की दुकान से सामान उठवाता तो कभी सोने-चांदी के आभूषण।

धीरे-धीरे उसका लालच इतना बढ़ गया कि वह छोटी-छोटी चीजें भी चोरी करवाने लगा। बाजार के दुकानदार आए दिन की इन चोरियों से बहुत परेशान थे।

एक दिन फलों के एक दुकानदार ने देखा कि उसकी दुकान पर रखा अंगूरों का बड़ा गुच्छा देखते ही देखते गायब हो गया। उसे याद आया कि कुछ मिनट पहले यहां से एक आदमी के साथ उसका रोबोट गुजरा था। फल विक्रेता को शक हो गया कि हो न हो, चोरी उसी रोबोट ने की है। पर यह रोबोट है किसका?

एक दिन प्रेम चोपड़ा ने रामसिंह 070 को आदेश दिया कि वह झवेली ब्रदर्स की दुकान से कीमती जवाहिरात उठा ले। रोबोट धीरे-धीरे झवेली ब्रदर्स की दुकान की ओर चल पड़ा। दूर खड़ा प्रेम चोपड़ा दूरबीन से रोबोट पर नजर रखे था। रोबोट दुकान में घुसा, उसने अपनी गरदन इधर-उधर घुमाई, सेल्समैन ग्राहकों से बातें कर रहा था। रामसिंह 070 ने कुछ जवाहिरात उठाए और अपने गुप्त खाने में छिपा लिए। उसने दूसरे काउंटर की ओर कदम बढ़ाए। फिर एक काउंटर से दूसरे काउंटर तक जाने-आने लगा। तभी पुलिस की गाड़ी की आवाज सुनाई दी। प्रेम चोपड़ा घबरा गया। उसकी समझ में नहीं आया कि पुलिस कैसे आ पहुंची?

प्रेम चोपड़ा को इस बात का जरा-सा भी आभास नहीं था कि झवेली ब्रदर्स की दुकान में क्लोज-सर्किट टेलीविजन कैमरे लगे हुए हैं। इन कैमरों के द्वारा सुरक्षा अधिकारी दुकान में आने-जाने वाले हर व्यक्ति पर नजर रखते हैं। इन्हीं कैमरों की मदद से दुकान के अंदर के कमरे में बैठे सुरक्षा अधिकारी ने रोबोट को चोरी करते देख लिया था और उसने तुरंत ही पुलिस को फोन कर दिया था। पुलिस ने दुकान में घुसते ही दुकान का दरवाजा बंद कर दिया। जब प्रेम चोपड़ा ने यह सब देखा तो वह जैसे सिर पर पांव रखकर भाग खड़ा हुआ। वह भाग रहा था और उसके हाथ का रिमोट कंट्रोल पी-पी की आवाज कर रहा था। वह रोबोट से दूर चला गया था। इससे रोबोट के काम में रुकावट आ गई थी। यह पी-पी की आवाज इसी बात का संकेत दे रही थी।

प्रेम चोपड़ा कई दिन तक पुलिस से छिपता रहा, परंतु अपराधी कभी भी छिप नहीं पाता। पुलिस ने रोबोट के पीछे लगी नंबर प्लेट से पता लगा लिया कि यह रोबोट किस कंपनी का बना हुआ है और इसे किस दुकान से, किस आदमी ने खरीदा है। इस जानकारी के आधार पर एक दिन पुलिस ने प्रेम चोपड़ा को पकड़ ही लिया।

प्रेम चोपड़ा पर चोरी कराने का मुकदमा चला। उसने अपने ऊपर लगे इलजाम को गलत बताया, क्योंकि उसके घर से चोरी का कोई सामान बरामद नहीं हुआ था। वह तो उसने पहले ही अपने साथियों के जरिए रफा-दफा करवा दिया था।

अदालत में सरकारी वकील ने प्रेम चोपड़ा से पूछा—'तुमने रोबोट क्यों खरीदा?'

'घर के कामों में सहायता लेने के लिए'—प्रेम चोपड़ा ने जवाब दिया।

'वह तो ठीक है, पर तुमने उसके 'प्रोग्राम' को बदल उससे चोरी भी करवानी शुरू कर दी?'

'नहीं, वकील साहब! मैं तो उसके 'प्रोग्राम' को बदलने का तरीका भी नहीं जानता। यह कब और कैसे चोरी करता था, मैं तो कुछ नहीं जानता। किसी और ने इसके 'प्रोग्राम' के साथ छेड़छाड़ की हो तो मैं कुछ कह

नहीं सकता।'—प्रेम चोपड़ा ने दीन-हीन बनते हुए कहा।

सरकारी वकील जानता था, प्रेम चोपड़ा अपने आप तो सच बोलेगा नहीं। इसलिए इसकी चोरी सिद्ध करनी होगी। उसने कहा—'जज साहब, इस रोबोट के 'मेमोरी टेप' को किसी रोबोट विशेषज्ञ को दिखलाना पड़ेगा। अतः इसके लिए आज्ञा दी जाए।'

जज साहब ने आज्ञा दे दी।

अब तो प्रेम चोपड़ा घबरा गया। उसने सोचा भी नहीं था कि इस तरह भी खोजबीन की जा सकती है।

अगले दिन पूरे शहर में इस वारदात की चर्चा थी। अखबारों ने बड़े-बड़े अक्षरों में छापा—'रोबोट को 'कोर्ट' में हाजिर किया जाएगा।' सारा शहर इस खबर को पढ़कर उत्सुक था कि आखिर रोबोट 'कोर्ट' में क्या गवाही देगा?

सुबह से ही अदालत में बहुत भीड़ थी। कार्यवाही आरंभ होने से पहले ही पुलिस ने रामसिंह 070 को कठघरे में खड़ा कर दिया।

सरकारी वकील पूरे आत्मविश्वास के साथ एक के बाद एक तथ्य बता रहा था। उधर प्रेम चोपड़ा निश्चिंत था कि उसका रोबोट कभी रहस्य नहीं खोलेगा।

'योर ऑनर'—सरकारी वकील गोयल ने कहा—'सुपर रोबोट कंपनी ने बताया है कि इस तरह के रोबोट्स के टेप में पिछले हफ्ते तक की भरी हुई स्मृति ही सुरक्षित रहती है।'

'लेकिन केस तो एक हफ्ते बाद शुरू हुआ है।'—जज ने कहा।

'जी हां!' सरकारी वकील ने प्रेम चोपड़ा की ओर देखकर मुस्कराते हुए जवाब दिया—'तभी से इस रोबोट का स्विच ऑफ किया हुआ है।'

जज ने कहा—'आप आगे बात जारी रखें।'

सरकारी वकील ने अब रोबोट का स्विच ऑन किया। रोबोट के नीले-हरे बल्ब जल उठे। प्रेम चोपड़ा घबराया हुआ यह सब देख रहा था।

वकील ने रामसिंह 070 से पूछा—'तुम्हारा मालिक कौन है?'

रोबोट से आवाज आई—'श्री प्रेम चोपड़ा।'

'तुम इन प्रेम चोपड़ा के लिए क्या काम करते थे?'—वकील ने दूसरा प्रश्न पूछा।

रोबोट चुप था, उसके भीतर से 'किर्र-किर्र' की आवाज आ रही थी, फिर धीमी-धीमी आवाज में उसने बताया—'घर का सारा काम-काज, सफाई करना, लॉन की घास काटना, पेड़-पौधों की देखभाल करना, रसोई का काम करना, कपड़े धोना और बाजार से सामान लाना....इसके अलावा मालिक का जो भी आदेश हो।'

वकील ने रोबोट से फिर पूछा—'पिछले एक हफ्ते में तुमने क्या-क्या काम किए? अपनी मेमोरी को देखकर बताओ।'

रामसिंह 070 के अंदर फिर 'किर्र-किर्र' की आवाज होने लगी। फिर आवाज शुरू हुई—'कार का दरवाजा खोला....सामान निकाला....दरवाजा बंद किया....बाएं मुड़ा....तीस कदम चला....रुका....बाईं ओर कीमती सामान की दुकान....आदेश सिग्नल.... (कोई आवाज नहीं) ....बाएं मुड़ा.... बीस कदम चला....।'

'योर ऑनर, जरा बीच-बीच की खाली जगह पर ध्यान दें। कोई कार्य है जो गुप्त है'—सरकारी वकील ने कहा। फिर रामसिंह 070 से कहा—'रुको, फिर से अपना टेप दोहराओ, जहां-जहां खाली जगहें हैं, वहां पर कोई आदेश नहीं है क्या?'

रामसिंह 070 चुप रहा, उसके अंदर से कोई आवाज नहीं आई।

'बताओ, रामसिंह 070! इन खाली जगहों पर तुम्हारे मालिक ने क्या-क्या आदेश दिए थे, जिन्हें तुम छिपा रहे हो।'

'जानकारी बताने के लिए नहीं है'—रामसिंह 070 ने जवाब दिया।

'लेकिन क्यों नहीं बता सकोगे?'

'क्योंकि रोबोट अपने मालिक के आदेश का पालन करता है'—रामसिंह 070 ने बहुत धीमे-धीमे कहा।

वकील ने प्रेम चोपड़ा की तरफ देखा, वह बहुत परेशान दिखाई दे रहा था।

'योर ऑनर, प्रेम चोपड़ा ने रोबोट को वे बातें न बताने का आदेश दिया है, इससे यह साबित होता है कि प्रेम चोपड़ा ने ही रोबोट से चोरियां करवाई हैं। वह जानकारी उजागर होनी ही चाहिए। जिस दुकान से इसने गणेश की कीमती मूर्ति उठाई थी, उसके कर्मचारियों ने बताया कि जब वह चोरी हुई उस समय यह रोबोट उस दुकान में मौजूद था।'

'लेकिन यह सबूत नहीं है और न ही इससे प्रेम चोपड़ा कसूरवार ठहरते हैं।'—जज ने सरकारी वकील से कहा।

तभी वकील को वे तीन नियम याद आ गए जो सुपर रोबोट प्लाजा के सेल्समैन ने उन्हें बताए थे।

वकील साहब ने रामसिंह 070 के पास जाकर कहा—'रोबोट तो किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता, फिर तुमने प्रेम चोपड़ा के कहने पर चोरी करके इतने लोगों को नुकसान क्यों पहुंचाया?'

रामसिंह 070 ने गर्दन हिलाई।—'रोबोट किसी को नुकसान नहीं पहुंचाते।'

वकील ने फिर दोहराया—'क्या तुम यह जानते हो कि जिनका सामान चोरी गया है, उन्हें बहुत नुकसान पहुंचा है? तुम किसी को नुकसान न पहुंचाने के अपने सिद्धांत से हट गए हो रोबोट रामसिंह 070!'

'नहीं रामसिंह, नहीं....'—तभी प्रेम चोपड़ा अचानक ही चीख पड़ा।

जज ने उसे डांट दिया—'चुप रहिए, आप चुपचाप खड़े रहिए।'

वकील ने रोबोट की तरफ देखकर कहा—'बताओ, क्या आदेश भरे थे तुम्हारे मालिक ने?'

रामसिंह 070 की गर्दन दाएं से बाएं घूमी और फिर उसकी मशीन ने संकेत देने शुरू किए। 'किर्र-किर्र' की आवाज के साथ रोबोट के अंदर कल-पुर्जों के आपस में ही टकराने और टूटने की आवाजें आने लगीं। कुछ ही मिनट बाद 'पिप-पिप' की आवाज के साथ उसके माथे पर लगा लाल बल्ब जल उठा। यह रामसिंह 070 की रिपोर्टिंग तकनीक के खत्म हो जाने का सिग्नल था। रोबोट के सीने के बीच का दरवाजा खुल गया। यहां एक छोटा-सा स्क्रीन था। इस स्क्रीन पर लिखा था—'तकनीकी मौत'।

'क्या....रोबोट रामसिंह 070 मर गया?'—सुपर रोबोट प्लाजा का सेल्समैन, जो वहां भीड़ के बीच में बैठा था, उठकर रामसिंह 070 के पास दौड़कर आ गया।

अदालत के कमरे में सन्नाटा छा गया। जज, वकील और वहां उपस्थित सभी लोग सन्न रह गए। सेल्समैन का गला भर आया। वह अभी भी रामसिंह 070 के पास खड़ा बुदबुदा रहा था—'तुम्हारे मालिक ने बहुत अन्याय किया तुम्हारे साथ.... और तुम सब सहते रहे। और अब तुमने आत्महत्या कर ली।'

सभी लोग रोबोट की आत्महत्या से दुखी हो गए। वकील साहब ने सन्नाटा भंग करते हुए कहा—'योर ऑनर, रोबोट का भी अपना एक जीवन होता है, उसके भी अपने कुछ नियम और सिद्धांत होते हैं, परंतु प्रेम चोपड़ा जैसे लालची और स्वार्थी लोग न किसी कानून को मानते हैं, न किसी नियम को। इनके मन में न किसी के लिए प्रेम होता है और न दया। रोबोट रामसिंह 070 अपने मालिक प्रेम चोपड़ा के प्रति वफादार था। साथ ही वह किसी को नुकसान भी नहीं पहुंचाना चाहता था। अपने मालिक प्रेम चोपड़ा के आदेशों का पालन करते हुए मजबूरी में गलत काम करके भी वह अपने मालिक के लिए चुप रहा। यहां तक कि उसे आत्महत्या भी करनी पड़ गई।'—इतना कहकर वकील साहब ने अपना चश्मा उतारकर जेब में रख लिया और अपनी फाइलें बटोरने लगे।

जज ने अपना फैसला दिया कि रोबोट रामसिंह 070 निर्दोष था। वह चोर नहीं था, चोर तो प्रेम चोपड़ा है और उन्होंने प्रेम चोपड़ा को सजा सुना दी। ❖

व्यक्ति, समाज और नैतिकता पृष्ठ 18 का शेष

हैं। ये एक ही तथ्य के प्रतिपादन की दो पद्धतियां हैं। जहां हम व्यक्ति-हित की बात करते हैं, वहां देश व समाज का हित अंतर्निहित रहता है और जहां देश और समाज के हित की बात करते हैं, वहां व्यक्तिहित अंतर्निहित रहता है। इन दोनों को समानांतर रेखाओं में बांटा नहीं जा सकता।[30]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति की वैयक्तिकता उसे स्वार्थान्ध बना देती है, तो समाज की कोरी सामाजिकता व्यक्ति की महत्ता को निगल जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'व्यक्ति समाजाभिमुख होकर शक्ति का विस्फोट करता है और समाज व्यक्ति-अभिमुख होकर उपयोगी बनता है। व्यक्ति और समाज की निरपेक्ष व्याख्या हमें सत्य से दूर ले जाती है।'[31]

अतः समाज-विच्छिन्न व्यक्ति वास्तविक मनुष्य नहीं है, बल्कि उसका केवल एक अंश है। सामाजिक संबंध व्यक्ति की सत्ता के आवश्यक भाग हैं और व्यक्ति-विच्छिन्न कोई समाज नहीं है। व्यक्ति और समाज में सापेक्ष संबंध हैं। दोनों को अलग-अलग करके देखना न्यायसंगत नहीं होगा। व्यक्ति और समाज—ये जीवन के दो आयाम हैं। कुछ धागे ऐसे हैं, जो व्यक्ति को जोड़ते चले जाते हैं और एक समाज बन जाता है। कुछ सूत्र ऐसे हैं, जो व्यक्ति को बचाए रखते हैं, व्यक्ति बनाए रखते हैं।

ज्ञान, इंद्रिय, संवेदना, शुभ-अशुभ, सुख-दुख, आनंद, शक्ति और वेदनीय कर्म—ये व्यक्ति को वैयक्तिकता प्रदान करते हैं। ज्ञान अपना होता है, इंद्रिय संवेदन अपना होता है, दुख का संवेदन अपना होता है। आनंद और शक्ति भी अपने-अपने होते हैं। फिर भी व्यक्ति समाज के बिना जी नहीं सकता। समाज के बिना साहित्य और सभ्यता का, आनंद और सुख-दुख का कभी विकास नहीं हो सकता। अतः पूर्ण विकास के लिए व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने हॉब्स, लॉक, रूसो की तरह न केवल व्यक्ति को महत्त्व दिया और न ही प्लेटो और अरस्तू की तरह केवल समाज को ही, अपितु उन्होंने व्यक्ति और समाज, दोनों को महत्त्व दिया है। 'सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा'—का पक्षधर होते हुए आचार्यश्री व्यक्ति-सुधार से शुरुआत तो करते हैं, किंतु लक्ष्य समाज का सुधार या विकास होता है। वे व्यक्ति की वैयक्तिकता और समाज की सामाजिकता में संबंध स्थापित करते हैं, व्यक्ति और समाज के सापेक्ष संबंध को महत्त्व देते हैं। ❖

संदर्भ

1. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, प्रो. वेदप्रकाश वर्मा, पृ. 310
2. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, पृ. 312
3. नीतिशास्त्र, प्रो. रजनी कपूर, पृ. 261
4. लेवियेथन, चैप्टर-13
5. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, पृ. 311
6. पालिटिक्स, 1/14
7. नीतिशास्त्र, पृ. 262
8. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, पृ. 312
9. एथिकल स्टडीज, पृ. 174
10. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, पृ. 147
11. घट-घट दीप जले, पृ. 223
12. मैं : मेरा मन : मेरी शांति, पृ. 31
13. वही
14. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, पृ. 140
15. वही, पृ. 141
16. वही, पृ. 143
17. वही, पृ. 146
18. अणुव्रत विशारद, पृ. 103
19. वही, पृ. 104
20. जीवन विज्ञान शिक्षा का नया आयाम, पृ. 124
21. वही, पृ. 134
22. वही
23. जीवन विज्ञान स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प, पृ. 124
24. वही, पृ. 101
25. जीवन विज्ञान शिक्षा का नया आयाम, पृ. 137
26. हिंदस्वराज्य, पृ. 140
27. वही, पृ. 140
28. वही, पृ. 141
29. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, पृ. 147
30. महाप्रज्ञ से साक्षात्कार, पृ. 135
31. मैं : मेरा मन : मेरी शांति, पृ. 32

❖❖

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

Finolex

Finolex Gets People Together

Prem Raj Bhansali

Secretary of

Jain College

SRI HINDWANI
E L E C T R I C A L S

 # 234, S. V. Lane, Chickpet, BANGALORE 560053

Tel. : 22258946, 22874709, 41149527 Fax : 41247292

e-mail : hindwanielectrical@gmail.com

प्रेषण दिनांक 30 जून, 07
जैन भारती, जुलाई, 2007

Licensed to Post without Pre-Payment Under Licence
No. Tech.(WR)47-2/05-06/11 Valid till 31-12-2008
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/06-08

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।